श्री भागवत दर्शन

भागवती कथा

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

खण्ड 10

❀ श्रीहरिः ❀

श्रीभागवत-दर्शन ❀

भागवती-कथा

(दशम् खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता ।
प्रणीतं प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

लेखक–

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

प्रकाशक

संकीर्तन-भवन

प्रतिष्ठानपुर (झूसी) प्रयाग

चतुर्थ संस्करण
२००० प्रति

रामनवमी
चैत्र, सं० २०३५

मूल्य १५ रुपया

● प्रकाशक :

संकीर्तन-भवन

प्रतिष्ठानपुर, (झूसी)

प्रयाग

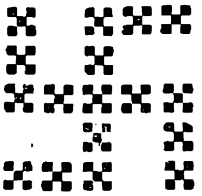

● मुद्रक :

बंशीधर शर्मा

भागवत प्रेस,

८५२ मुट्ठीगंज, प्रयाग

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय		पृष्ठाङ्क
१. आत्म-कथा	...	५
२. दक्ष यज्ञ में सती का भस्म हो जाना	...	१३
३. दक्ष को धिक्कार तथा शिव गणों का प्रकोप	...	२१
४. शिवजी को क्रोध तथा वीरभद्र की उत्पत्ति	...	२८
५. दक्ष यज्ञ विध्वंस के लिये वीरभद्र का गमन	...	३४
६. रुद्र पार्षदों द्वारा दक्ष यज्ञ का विनाश	...	४१
७. जगत् शिव की क्रीड़ा स्थली है	...	५१
८. शिवा का शिव के साथ विवाह	...	५९
९. देवादिकों का ब्रह्माजी के समीप जाना	...	६९
१०. ब्रह्माजी का शिवजी के समीप गमन	...	७८
११. कैलाश की अनुपम शोभा	...	८६
१२. ब्रह्मादिक देवों को महादेवजी के दर्शन	...	९३
१३. शिवजी द्वारा दक्ष यज्ञ पूर्ति का आशीर्वाद	...	१०२
१४. दक्ष यज्ञ का पुनरुद्धार	...	१०९
१५. दक्ष यज्ञ में भगवान् विष्णु का प्रकट होना	...	११५
१६. दक्ष यज्ञ में सबके द्वारा भगवान् की स्तुति	...	१२३
१७. दक्ष यज्ञ की समाप्ति	...	१२९
१८. सतीजी का पार्वती रूप में प्राकट्य	...	१३५
१९. शिव पार्वती विवाह	...	१५७
२०. शिव चरित उपसंहार	...	१८६
२१. अधर्म वंश	...	२०३

—o—

श्री भागवत-चरित (सप्ताह)

(रचयिता—श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

★ श्रीमद्भागवत के बारहों स्कन्धों की कथा ब्रजभाषा के छप्पय छन्दों में बड़ी ही ललित भाषा में वर्णन की गयी है। बीच-बीच में दोहा, चौपाई, सोरठा, लावनी तथा भजन भी दिये गये हैं। कथावाचक पंडितों के लिये यह बहुत ही उपयोगी है। सैकड़ों "भागवत-चरित व्यास" इसकी बाजे-तबले पर कथा कहकर अपनी आजीविका चला रहे हैं। साप्ताहिक पाठ, पाक्षिक तथा मासिक पारायणों के स्थल भी दिये गये हैं। सहस्रों नरनारी इसका नित्य पाठ करते हैं। ५-६ तिरंगे तथा सैकड़ों सादे चित्र हैं। कपड़े की सुन्दर जिल्द है। लगभग एक हजार पृष्ठों की सचित्र, सजिल्द पुस्तक की न्यौछावर ११) रु० मात्र है। अब तक सात संस्करण में इसकी ३३ हजार प्रतियाँ छप चुकी हैं। शीघ्र मँगावें।

★ सटीक भागवत-चरित (दो खण्डों में)--अनुवादक—पं० रामानुज पाण्डेय, बी० ए० विशारद 'भागवत-चरित व्यास'—भागवत-चरित की सरल सुबोध हिन्दी टीका है। दोनों खण्डों का मूल्य ४२) रु०।

पता—संकीर्तन-भवन, झूसी (प्रयाग)

शाम्बशिव

आत्म-कथा

मास्मिन् महाराज कृथाः स्म चिन्तां
निशामयास्मद्वच आदृतात्मा।
यद्व्यायतो दैवहतं नु कर्तुं
मनोऽतिरुष्टं विशते तमोऽन्धम् ॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, १९ अ०, ३४ श्लो०)

छप्पय

कब अपनोपन त्यागि पुकारूँ प्रभुवर ! तुमकूँ ?
कब अपनाओ सखे ! शिष्य सेवक लखि हमकूँ ?
कब सब तजि हरि भजूँ भूलि सब जगकूँ जाऊँ ?
कब तजि जगकी आश तुम्हारो नाथ कहाऊँ ?
कब निरखौं वृन्दा विपिन, कब मुरली की धुनि सुनूँ ?
कब कागद की कालिमा, भूलि कृष्ण को गुन गुनूँ ?

नहीं चाहता मैं कि कृष्ण के अतिरिक्त कोई कथा कहूँ, नहीं चाहता नारायण नाम के अतिरिक्त किसी का नाम लूँ, किन्तु विवश हूँ, परवश हूँ, असमर्थ हूँ, ऐसा न करने में। नहीं चाहता

---

* भगवान् ब्रह्मा महाराज पृथु को समझाते हुए कह रहे हैं—"राजन् ! आप इस बात की चिन्ता न करें कि हमारे सौवें यज्ञ में इन्द्र ने विघ्न डाल दिया। आप हमारी बात को आदरपूर्वक धारण करें। देखिये, दैव ने जिस कार्य में विघ्न डाला हो ऐसे काम के लिये हठ करने वाले पुरुष का मन अत्यन्त क्रोध से भरकर भयंकर मोह को प्राप्त होता है।"

कि चोरी करूँ, किन्तु चोर के चरित्रों ने और स्वयं चोर ने भी मुझे चोरी करने को विवश कर दिया है। वह चोर यदि अपना सा चोर बना ले, तब तो बात ही बन जाय। अधूरा चोर किधर का भी नहीं रहता। पाठक मुझे विवश करते हैं 'भागवती कथा' के साथ आत्म कथा भी लिखा करो। कुछ कहते हैं, 'भागवती कथा' जो है सो है ही; पहिले जिस खण्ड में तुम्हारा वक्तव्य नहीं होता, तो उत्साह नहीं बढ़ता। मैं अपनी कथा कहने लगूँ, तो 'भागवती कथा' रह जायगी। न कहना ही हमारी कथा है। विवशता, असमर्थता, अयोग्यता ही सबका एकमात्र उत्तर है। पाठक हमें नित्य ही बुरा भला कहते हैं, नहीं चाहते हम उनकी खरी-खोटी सुनें किन्तु विवश हैं सुनने को।

सङ्गम स्नान करके कोई सेठजी नौका पर चढ़कर इस पार झूसी आ रहे थे। उन्होंने मल्लाह से पूछा—'तुम्हारे कोई बड़ा भाई है ?' उसने कहा—'जी, था तो सही वह गंगाजी में डूब गया ?' सेठजी ने पूछा—'तुम्हारा पिता है ?' उसने कहा—'वह भी बाढ़ में बह गया ?' सेठजी ने अत्यन्त आश्चर्य से पूछा—'तुम्हारा बाबा कैसे मरा ?' मल्लाह ने कहा—'जी, उसे गंगा मैया ने ही ले लिया।' सेठजी ने कहा—'अरे, भाई तुम्हारा काम बहुत हत्यारा है, इसे छोड़ क्यों नहीं देते। मल्लाह चुप हो गया। थोड़ी देर पश्चात् उसने पूछा—'सेठजी ! आप कैसे आये यहाँ ?' सेठजी बोले—'एक मुकदमे में आये थे, पिताजी के देहान्त के पश्चात् भाइयों में झगड़ा हो गया।' 'आपके पिताजी कहाँ मरे सेठजी ?' मल्लाह ने पूछा। सेठजी बोले—'दुकान घर में ही मरे भैया ?' मल्लाह ने पूछा—'घर दुकान आपका एक ही होगा ?' सेठजी ने कहा—'हाँ भैया, बाहर दुकान है भीतर घर में मरे भैया।' सेठजी बोले। मल्लाह ने कहा—'और घर में कौन-कौन मरे ?' सेठजी की आँखों में आँसू भर आये बोले—'अरे, भैया,

क्या पूछते हो सात-सात लड़के हुए वे मर गये, मेरा बड़ा भाई मरा, एक मेरे ही बराबर मेरा लड़का था वह मर गया, विधवा बहू है।' मल्लाह ने कहा--'ये सब घर में ही मरे।' सेठजी बोले-हाँ भैया, सब घर में मरे।' तब मल्लाह ने कहा—'सेठजी, आपका घर तो बड़ा हत्यारा है उसे छोड़ दो और दुकान को भी छोड़ दो।' सेठजी बोले—'भैया, उसे छोड़ दें तो खायँ क्या मरना जीना तो लगा ही रहता है। दुकान घर न छोड़ने को विवश हैं।'

सत्य बात यह है कि प्राणी जैसी परिस्थिति उसे भाग्य से पुरुषार्थ से कैसे भी प्राप्त है, उसमें वह इच्छा से अनिच्छा से रहने को विवश है। जब यही बात है तो दूसरों को फिर भला-बुरा क्यों कहता है ? उनकी आलोचना क्यों करता है ? वे भी तो ऐसा करने में विवश हैं। बात तो यथार्थ है, किन्तु परनिन्दा करने में-दूसरों की आलोचना करने में-एक ऐसा आनन्द आता है कि मनुष्य उसके लिये भी विवश है। बड़े-बड़े नामी सन्तों को देखा है, जब किसी दूसरे सन्त की कोई कटु आलोचना करता है, तो उसे बड़े रस से सुनते हैं। स्वयं अपनी ही कहूँ, जानता हूँ परनिन्दा परचर्चा करना महापाप है, किन्तु जहाँ आकर कोई कहता है, 'महाराज ! उन साधु के यहाँ तो यह त्रुटि है, उनमें तो अमुक दोष है, वे तो नाम पद प्रतिष्ठा को सब करते हैं।' इन बातों में बड़ा रस मिलता है, यदि उसने यह भी कह दिया कि 'महाराज ! बस आप में ही हमारी श्रद्धा जमी है' फिर तो कुछ पूछिये ही नहीं, मानों हमें तीनों लोकों का राज्य मिल गया। यह जानते हुए भी कि इस व्यक्ति के बचनों का कोई मूल्य नहीं है। यह महा झूठा लल्लो-चप्पो करने वाला तुच्छ व्यक्ति है, फिर भी अपने समक्ष वालों तथा अपने से बड़े व्यक्तियों की निन्दा तथा आत्मप्रशंसा में स्वाभाविक आनन्द आता है। सारांश इतना

ही है कि हम विवश हैं। मेरे हितैषी बन्धु अब कहते हैं—'तुमने बैठे-बैठाये यह इल्लत क्यों पाल ली है, पहिले कैसे एकान्त में बैठकर राम-राम करते थे, अब यह ला, वह ला, यह नहीं हुआ, वह नहीं हुआ; इस प्रपञ्च में पड़ गये ?'

अभी मेरा विवेक सर्वथा नष्ट नहीं हुआ है। मैं जानता हूँ परिग्रह का क्रम बढ़ता ही जाता है, प्रवृत्ति में तृप्ति नहीं, उसकी सीमा नहीं। एक के पश्चात् दूसरी आवश्यकता, दूसरी के पश्चात् तीसरी आती जाती रहती हैं। इनका अन्त नहीं, अवसान नहीं, समाप्ति नहीं। बाबाजी के चक्कर वाली बात पढ़ी ही होगी। यथार्थ चक्कर में फँस गया हूँ, इस चक्कर में अभी एक भ्रम मुझे बना है, अब भी मेरा ऐसा विश्वास है कि इससे मैं जब भी चाहूँ, तभी उसी प्रकार पृथक् हो सकता हूँ, जैसे अण्डे से पक्षी, जब चाहूँ स्वेच्छा से छोड़कर भाग सकता हूँ। यदि वह भ्रम, भ्रम न होकर सत्य सिद्ध हुआ, तब तो कोई बात ही नहीं। यदि वास्तव में यह भ्रम ही हुआ, तब तो फिर गोविन्दाय नमो-नमः ही है। यह तो मेरी बात की भूमिका है। आज भूमिका ही रहने दो। आज तो मुझे और कुछ कहना है नहीं, आज तो बहुत से आवश्यक पत्र लेखकों के प्रश्नों का उत्तर मात्र देना है।

पाठकों के हमारे पास नित्य ही बहुत से पत्र आते हैं उनमें अधिकांश में वे अपना रोष इसी बात पर प्रकट करते हैं कि आपके खण्ड समय पर निकलते क्यों नहीं ? देर क्यों करते हैं ? हम बार-बार बता चुके हैं कि कागद की समस्या ऐसी टेढ़ी हो गई है कि हमारा कोई वश नहीं चलता। पाठकों से अधिक उत्सुकता तो हमें स्वयं है, हम अपने प्रयत्न में शक्ति भर कुछ उठा नहीं रखते। वैसे लगभग तैंतीस खण्ड लिखे लिखाये तैयार रक्खे हैं। कागद और छपाई का उचित प्रबन्ध हो जाय, तो हम महीने में दो-तीन प्रकाशित कर सकते हैं। बहुत से पाठक तो

अत्यन्त अधीर हो जाते हैं। जब हमने यह सुझाव रक्खा कि 'पाठक नित्य थोड़ा-थोड़ा पढ़ा करें और उसे मनन करें जिससे आगे की उत्सुकता बनी रहे।' इस पर एक सज्जन लिखते हैं— 'हम आपसे पूछते हैं, आप बहुत प्यासे हों और आपको बहुत सुन्दर मीठा-मीठा स्वादिष्ट एक गिलास शरबत दे दिया जाय और कहें कि इसे थोड़ा-थोड़ा चौबीस घण्टे में पीओ तो तुम पी सकते हो ?" इस पर हम कहते हैं—'आपको एक बोरा शक्कर ही दे दी जाय और कहें कि इस सम्पूर्ण कुएँ के जल को मीठा बना दो, तो आप बना सकते हैं ?' हम छपाने बैठे हैं—'भागवती कथा' साधन हमारे पास कुछ नहीं है, ऐसी दशा में वे धैर्य्य रक्खें, हमारा काम करने का है, सफलता श्रीहरि के हाथ में है।'

कुछ बूढ़े नर-नारी बड़ी अधीरता के साथ लिखते हैं— "महाराज, हमारे जीवन में ही इसे पूरी कर देना, जिससे पूरी पुस्तक पढ़कर ही हम मर सकें।" यदि उन्हें अपनी आयु की निश्चित तिथि मालूम हो, तो इस प्रश्न का उत्तर दिया भी जा सकता है। बूढ़े बैठे रहते हैं। युवक मर जाते हैं। आज हम स्वस्थ हैं कल मर गये। जो शरणार्थी विभिन्न स्थानों में मारे गये हैं या भागकर आये है, उन्हें क्या पता था कि कल प्रलय हो जायगी, हम मर जायँगे या घर-बार विहीन होकर निष्किञ्चन बनकर इधर-उधर भटकते रहेंगे। बड़े-बड़े कुलीन घरों के फूल से भी सुकुमार बच्चे जो तनिक मैले ही कपड़ों को फेंक देते थे, वे आज दान में आये दूसरों के पहिने फटे पुराने एक-एक कपड़े के लिये रो रहे हैं, झगड़ रहे हैं। कल जो सुख से महलों में सो रहे थे, उनके अंगों के टुकड़े हुए मिले हैं। इसलिये मृत्यु का निश्चय नहीं। 'भागवती कथा' अनन्त है, उसका अन्त नहीं। जितना पढ़ लो उतना बहुत है, जितना न पढ़ो उतना ही कम है। अतः वृद्धों को चिन्ता नहीं करनी चाहिये। इसका प्रत्येक खण्ड

का प्रत्येक अध्याय स्वतन्त्र है और पूर्ण है। अतः जितना पढ़कर मरेंगे उतना ही पर्याप्त रहेगा। यही पूर्ण चिन्ता बनी रहे कि पूर्ण भागवती कथा मुझे पढ़नी है, सुननी है, तब तो वे उस नित्य लोक में चले जायँगे, जहाँ के पशु-पक्षी भी सतत हरि कथा का ही गान करते रहते हैं।

कुछ बन्धु लिखते हैं--'आप इतनी सुन्दर-सुन्दर कथायें लिखते हैं--उनका नाम निर्देश तो कर दिया करें, किस पुराण किस उपपुराण की यह कथा है।' बात यह है कि कथा के प्रवाह में सूतजी इस प्रकार के प्रमाणों को देने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। ये सभी कथायें प्राचीन सनातन हैं, प्रकारान्तर से ये प्रसिद्ध कथायें सभी पुराणों में आती हैं, ये पौराणिक कथायें हैं, यही पर्याप्त है।

कुछ सज्जन लिखते हैं--'कथा पढ़ते-पढ़ते बहुत-सी शंकायें उत्पन्न होती हैं। उनका समाधान भी साथ ही कर दिया करें।' ऐसे भाइयों को स्मरण रखना चाहिये कि ये तो कथायें हैं, शङ्का समाधान के लिये कथाओं के अन्त में 'भागवत-दर्शन' नामक खण्ड निकला करेंगे। यह विषय उन्हीं खण्डों का है, जो जैसे अश्वमेध यज्ञ हुआ। यह एक हुई घटना है। कथा में यही वर्णन होगा कि अमुक राजा ने ऐसा अश्वमेध किया। अश्वालम्बन उपयुक्त है या अनुपयुक्त यह तर्क का दार्शनिक विषय है, कथा से इसका विशेष सम्बन्ध नहीं। फिर हम तो जो सुनते हैं वही लिखते हैं।

कुछ कहते हैं--"आप, कृष्ण कथा से पाप कटते हैं, भगवान् वासुदेव की ही भक्ति सार है" ऐसीसाम्प्रदायिक भावना से क्यों लिखते हैं? क्या राम या शिव भक्ति सार नहीं हैं क्या कौशल किशोर की कमनीय कथा कल्मषों को काटने के लिये कुल्हाड़ी का काम नहीं करती? आप यह लिखा करें कि "भगवत् कथा

सार है, भगवान् की भक्ति ही श्रेष्ठ है।" मेरा विचार है ऐसे भाइयों ने भक्ति मार्ग का परिचय ही नहीं पाया। कृष्ण, राम, वासुदेव, शिव--ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। कृष्ण कथा, भगवत् कथा में कोई अन्तर नहीं। राम पद प्रीति, वासुदेव पद प्रीति का एक ही अर्थ है। इसमें तो महान् उदारता है, संकीर्णता की गंध भी नहीं।

कुछ बन्धुओं के ऐसे पत्र आते हैं--'आपकी कथा का मूल्य अधिक है।' उनसे मेरा निवेदन है—यह मेरा विषय नहीं, यह प्रकाशक तथा व्यवस्थापकों का विषय है। मेरी कथा का तो कोई मूल्य दे ही नहीं सकता। यह क्षुद्र प्राणी जो मनो-विनोद नाटक प्रहसन आदि में पैसे को पानी की भाँति बहाकर लिहाते हैं, वे भागवती कथा का मूल्य क्या देंगे ?

कुछ बन्धु वैसे पुस्तकें चाहते हैं, वैसे भी पुस्तकें यहाँ से जाती ही हैं, किन्तु उनकी एक मर्यादा है। अब वे पुराने ब्रह्मचारी जी तो रह ही नहीं गये कि जो सामने आया उठाकर दे दिया। अब तो व्यवहारी व्यापारी दोनों बन गये हैं। देते समय उनके मस्तिष्क में यह बात तुरन्त घूम जाती है कि इसे देने से इसके प्रचार में कितनी सहायता होगी ? 'यस्तु आशिष आशास्ते न सः भृत्यः स वै वणिक्।'

कुछ स्पष्ट तो नहीं लिखते किन्तु ऐसा सन्देह करते हैं कि 'न जाने इनके साल में १२ खंड निकलेंगे भी कि नहीं ? हमारे रुपये खटाई में न पड़ जायँ।' है तो यह विषय भी प्रकाशकीय, किन्तु वह मुझसे अभिन्न नहीं, इसलिये मैं भी इनका उत्तर देता हूँ। देखो भैया, ! सच्ची और सीधी बात है यह—हमारी दृष्टि में अभी तक भागवती कथाओं की अपेक्षा रुपये पैसे का कोई भी महत्व नहीं। हम रुपया इसीलिये चाहते हैं कि लोगों में भागवती भावनाओं का प्रसार हो। इसलिये हम अपने प्रयत्न में

तो कोई कसर छोड़ेंगे नहीं। यदि हम सब भाँति असमर्थ ही हो जायँ, तब बात दूसरी है—लोगों के घर लूट गये, करोड़ों अरबों की सम्पत्ति नष्ट हो गई। दैव गति के सम्मुख किसकी चलती है। ऐसे छोटे विचार के लोग घबराते क्यों हैं? उन्हें तो भागवती कथा के लेने में लाभ-ही-लाभ है।

गङ्गाजी को न्हाइबो, विप्रनि तैं व्योहार।
डूबि जाय तो पार है, ऊबि जाई तो पार॥

कुछ बन्धु बड़े करुण शब्दों में लिखते हैं—"महाराज, भागवती कथा पढ़ते-पढ़ते हमारी आँखों से अविरल अश्रु धारायें बहती हैं। आप अग्रिम खण्ड भेजने में देर कर देते हैं, तो वे अश्रु सूखने लगते हैं—कृपया हमारे अश्रुओं को सूखने न दें, शीघ्र-से-शीघ्र अग्रिम खण्ड भेजें।' ऐसे बन्धुओं के चरणों में मेरी प्रार्थना है वे मुझे भी ऐसा आशीर्वाद दें, मेरे वज्र हृदय में भी प्रेम का संचार हो, 'भागवती कथा' सुनकर मेरी फूटी आँखें भी बह निकलें। मेरा पाषाण हृदय भी द्रवित हो जाय। दीपक के नीचे अन्धेरा ही रहता है। वैद्यक पढ़ाने वाले पंडित प्रायः बीमार ही बने रहते हैं। वेदान्त की पाठशाला में अध्यापन कराने वालों को अधिक संग्रही और कृपण देखा है। पुस्तकों के छापने वाले पुस्तक पढ़ते नहीं। इसी प्रकार मेरे हृदय में अनुराग नहीं होता। हो जाय तब तो ये सब झंझट ही छूट जायँ। आप सब भगवत् भक्त सज्जन ऐसा आशीर्वाद दें कि यह ग्रन्थ पूर्ण हो जाय और समय पर इसके खण्ड प्रकाशित होते रहें। आज इतना ही फिर अगले महीने।

नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार, श्री कृष्णार्पणमस्तु

संकीर्तन भवन झूसी,
आश्विन दुर्गाष्टमी, २००४ वि०

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

दक्ष-यज्ञ में सती का भस्म हो जाना

[१९८]

ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं
जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम् ।
ददर्श देहो हतकल्मषा सती
सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना ॥*

(श्री भा० ४ स्क०, ४ अ०, २७ श्लोक)

छप्पय

धरम हीन जो कुटिल करै निन्दा हरि हर की ।
गरम सड़ासी पकरि जीभ खेंचें वा नर की ॥
नाहिँ तु मूँदे कान जपै शत नाम राम के ।
हरि हर द्वेषी सगे बन्धुहू नाहिँ काम के ॥
तोतैं उपजी देह जिह, शिव उपयोगी रही नहिँ ।
कैसे ऊँचो म्हौं करूँ, जब हर दाक्षायणि कहहिँ ॥

भगवान के चरणारविन्दों में प्रेम हो; तो प्रेम में मर जाना

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! सब कुछ कहने के अनन्तर अपने पति जगद्गुरू भगवान् शिव के ही चरणाविन्द मकरन्द का चिन्तन करती हुई, सतीजी ने सब ओर से मन को हटा लिया। शिव ध्यान से उनके समस्त कलमष नाश हो गये थे। ऐसी निष्पाप सती का शरीर योगाग्नि से प्रज्जवलित हो उठा। वे वहीं योगाग्नि उत्पन्न करके भस्म हो गईं।"

भी अमरत्व को प्राप्त करना है। चन्दन को सूँघिये सुगन्ध देगा, रगड़िये तो भी सुगंधि देगा, काटिये तो भी सुगंधि देगा, अग्नि में जलाइये, तो और अधिक सुगंधि देगा, प्रभु के पादपद्मों में प्रेम होने पर—भगवान् से सम्बन्ध होने पर—अवगुण भी गुण हो जाते हैं। क्रोध करना, आत्महत्या करना—दोनों ही पाप हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध जब शिव प्रेम के साथ हो जाता है, तो ये दोष न रहकर गुण बन जाते हैं। गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम था, उनकी काम भावना होने पर भी भगवत् सम्बन्ध से वे श्लाघनीय ही हुईं। कंस, जरासन्ध, शिशुपाल आदि भगवान् से द्वेष करते थे, कंस भय के कारण नित्य इनका चिन्तन करता रहता था, भगवान् से सम्बन्ध होने के कारण उसके सब अपराध क्षमा हो गये। भगवान् के हाथों से मरकर वह परम पद को प्राप्त हुआ। शिशुपाल सर्वज्ञ सर्वात्मा प्रभु को सदा गाली देता था, किन्तु क्या हुआ? कीच को उलीचने से शरीर पर कीच ही गिरेगी और दूध उलीचने से दूध ही पड़ेगा। गाली देना यदि पाप है, किन्तु उसने औरों को गाली न देकर साक्षात् भगवान् को दी। इसलिए उसकी क्षुद्र ज्योति भगवान की महान् ज्योति में मिल गई। वह संसार बन्धन से सदा के लिये मुक्त हो गया।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! जब सतीजी ने विविध भाँति से दक्ष के सम्मुख शिव महिमा का बखान किया, किन्तु उसने उस पर अहंकार वश ध्यान ही न दिया, तब तो सतीजी ने प्राण देने का निश्चय कर लिया। वहीं यज्ञ मंडप में उन्होंने उस दक्ष से उत्पन्न अशुद्ध शरीर का अन्त कर देने का संकल्प करके कहा—"पिता! तेरे सिर पर पाप सवार हो गया है, तू शिवद्रोही बन गया है। शिवद्रोही से सम्बन्ध रखना तो दूर की बात है, उससे बोलना भी पाप है। उसका मुख देखने से भी दोष लगता है। मेरे इस शरीर का सम्बन्ध तेरे शरीर से है। यह तेरी देह से

उत्पन्न हुआ है, अतः यह शिवजी के काम का नहीं रहा, शिव ने सरलता वश--भोलेपन से--बिना तेरी परीक्षा लिए मुझे ग्रहण कर लिया। वे तो कृपा के सागर हैं, दूसरों के दोष देखना तो वे जानते ही नहीं। जैसे कोई भूल से विष मिश्रित अन्न खा ले, तो तुरन्त वमन करके उसे पेट से पृथक् कर देना चाहिए, जैसे अपने शरीर में से उत्पन्न मल-मूत्र का कोई आदर नहीं करते। सड़े हुए अङ्ग को काटकर शेष शरीर की बुद्धिमान् रक्षा करते हैं, इसी प्रकार मैं इस शरीर को त्यागकर दूसरा शरीर धारण करके श्रीशिव की सेवा करूँगी।

वे अन्तर्यामी प्रभु मेरे मन की सब बातें जानते हैं। जैसे छाया शरीर से पृथक् नहीं हो सकती, जैसे गंध पृथ्वी के बिना नहीं रह सकती, जैसे जल अपनी शीतलता को नहीं छोड़ सकता, जैसे अग्नि में दाहक शक्ति सदा रहेगी ही, उसी प्रकार मैं कभी भी श्रीशिव से पृथक् नहीं हो सकती। वे मेरे सर्वस्व हैं, प्राणेश्वर हैं, जीवन धन हैं, फिर भी तेरे संसर्ग से यह शरीर अब उनके उपयोगी नहीं रहा। इसे मैं अब धारण न करूँगी। तेरे देखते-देखते ही भस्म कर दूँगी।"

दक्ष ने समझा, वैसे ही धमकी दे रही है, शरीर त्यागना हँसी खेल नहीं है। फिर त्याग भी दे, तो मेरी क्या हानि, मैंने तो पहिले ही समझ लिया है कि मेरे जाने तो सती मर गई। जीवित ही रहे मुझे क्या, मर जाय तो और भी अच्छा। यह सोचकर वह क्रोध में भरकर बोला--"मेरे जाने तू मर जा या अपने घर चली जा, मेरा तेरा अब कोई सम्बन्ध नहीं। जो लड़की अपने सगे बाप का सबके सामने ऐसा अपमान कर सकती है, उसका तो मर जाना ही अच्छा है। तू मेरे शरीर से अवश्य उत्पन्न हुई है, किन्तु अघोरी, अशुचि, प्रेतों का-सा आचरण करने वाले शिव के संसर्ग से तू मेरे छूने योग्य नहीं रही।"

सतीजी ने कड़ककर कहा—"पिताजी ! इतने आगे मत बढ़ो। इन संसारी लोगों के साथ शिवजी की तुलना मत करो। उनके लिये कोई विधि नहीं, कोई निषेध नहीं। वे तो विधि निषेध से सदा परे हैं। जब सभी स्वाभावानुसार वर्ताव कर रहे हैं, तो हमें किसी की निन्दा करने का अधिकार ही क्या है ? श्रीशिव तो स्वभाव से परे हैं। शास्त्रों में निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्ति मार्ग दो ही तो मार्ग है। दोनों के भिन्न-भिन्न अधिकारी हैं। शिवजी इन दोनों से परे है। तेरी तो इस दम्भ यज्ञ के काले धुँए से दृष्टि ही काली नहीं हुई है, अपितु अन्तःकरण काला हो गया है। तू शिवजी की महिमा नहीं समझ सकता। तू द्वेष वश शिवजी की निन्दा करता है, उनकी पदवी को तो तू पा नहीं सकता।"

रोष के स्वर में दक्ष ने कहा—"शिव की पदवी शिव को ही रहे, भगवान् करें, वह पदवी हमें कभी प्राप्त न हो। जिसके पास एक वस्त्र की चीर नहीं, निर्लज्जों की भाँति नङ्गा घूमता है, भीख माँगकर खाता है, पेट नहीं भरता तो आक धतूरे को ही दबा जाता है, ऐसे दिगम्बर का ऐश्वर्य हमारे शत्रुओं को भी प्राप्त न हो।"

सतीजी ने कहा—"अरे, तो इस स्वाहा-स्वाहा को ही सब कुछ समझे बैठा है क्या ? ये तेरे पिट्ठू तेरे टुकड़े खाकर तेरी प्रशंसा के पुल बाँध रहे हैं, इसी से तू अपने को सब कुछ मानने लगा है क्या ? हमारे ऐश्वर्य को, त्यागी, महात्मा, ज्ञानी, ध्यानी योगी ही समझ सकते हैं। तुझ जैसे मूढ़ तो इन बाहरी धूमधाम को ही सब कुछ माने बैठे हैं। जो यज्ञ द्वेषवश, बड़े लोगों से विरोध करके शिवजी का तिरस्कार करके विधिहीन किया गया है, वह कभी सफल न होगा। तू इसे महान् ऐश्वर्य समझता है, हमारे स्वामी की चरण धूलि के एक कण के समान भी तेरा ऐश्वर्य नहीं है।"

दक्ष ने सूखी हँसी हँसकर उपेक्षा के स्वर में कहा—"तभी तू तो बिना बुलाये दौड़ी आई। तेरे घर ऐश्वर्य्य है तो तू वहाँ जाती क्यों नहीं ? लँहगा फरिया के लिये ही तो तू लड़ रही है कि मुझे तीहर नहीं मिली, मेरे पति को बागो नहीं मिला। हमारा भाग बन्द कर दिया। हमारी जीविका हर ली। तेरा स्वामी ऐश्वर्य्य-शाली होता, तो तू इस छोटी-सी बात के लिये मरने को क्यों उतारू होती ?"

सतीजी ने कहा—"पिताजी ! तेरी चोली ओढ़नी की मैं भूखी नहीं हूँ, शिवजी के सम्मुख तो आठों सिद्धि नवों निद्धि सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। मैं उनकी आज्ञा उलंघन करके आई हूँ। वे तो सर्वज्ञ हैं, तेरे सब भावों को जानते थे। मोहवश मैंने उनकी आज्ञा नहीं मानी। वैसे वे बड़े दयालु हैं, अब भी मैं जाऊँगी, तो वे निषेध न करेंगे। मुझे रख लेंगे, किन्तु अब मैं क्या मुँह लेकर उनके समीप जाऊँ ? अब जब वे कभी हँसी में तेरे सम्बन्ध से तेरे गोत्र के कारण मुझे दाक्षायणी कहेंगे, तब तो मारे लज्जा के मैं मर ही जाऊँगी। उस समय मैं उनकी ओर देख नहीं सकती। इसलिये आज मैं इस शरीर का तेरे साथ जो सम्बन्ध है, उसे सदा के लिये अन्त कर दूँगी। इस मलिन संसर्ग, दूषित देह को अग्नि में तपाकर—शुद्ध करके—अपने पाप का प्रायश्चित्त करके, तब शिवजी की सेवा की अधिकारिणी बन सकूँगी।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! इतना कहकर सतीजी चुप हो गईं। उन्होंने वाणी का निरोध किया। चित्त को चन्द्र-मौलि के चरणों में लगाया। शुद्ध जल से तीन आचमन किये। उन्होंने दक्ष के आसन का स्पर्श भी नहीं किया। पृथ्वी पर ही बैठ गईं। उस समय उन्होंने अपनी चारों ओर बिखरी हुई पीली साड़ी को समेट लिया। पद्मासन लगाकर बैठ गईं। उनके दोनों कमल के समान खिले नेत्र उसी प्रकार बन्द हो गये, जिस प्रकार

सूर्यास्त के समय सरोवर के कमल मुँद जाते हैं। चन्द्रमा के समान उनका देदीप्यमान् मुखमण्डल दमक रहा था। हृदय में शिवजी का निरन्तर ध्यान कर रही थीं। उन्होंने बाह्य अग्नि का

स्पर्श भी नहीं किया। क्रोध को त्याग दिया। योग की विधि से अग्नि उत्पन्न की।"

शरीर की स्थिति प्राण और अपान से ही है। नाभि से नीचे वस्ति प्रदेश में अपान वायु रहता है, नाभि से ऊपर हृदय देश में प्राण वायु रहता है। प्रान ऊपर को खींचता है, अपान नीचे को। इन दोनों के बीच में नाभि प्रदेश में समान वायु रहता है। वह दोनों के माप दण्ड को ठीक रखता है, उन्हीं से शरीर की स्थिति है। जहाँ समान वायु ने इनको छोड़ा प्राण अपान से पृथक हुए, वहीं जीवात्मा इस शरीर को छोड़ देता है। जो पापी पुरुष हैं जिनकी अधोगति होने वाली है, मरते समय उनके प्राण मल-मूत्रों के–अधो–द्वारों से निकलते हैं। जिनकी ऊर्ध्व गति होने वाली होती है, उनके प्राण, आँख, नाक, मुख आदि द्वारों से निकलते हैं। जिन्होंने मन, प्राण तथा वीर्य और इन्द्रियों को वश में कर रखा है, उनके प्राण ब्रह्माण्ड को भेदकर दशम द्वार से निकलते हैं। ऐसे योगी पुरुष मृत्यु को जीत लेते हैं। साधारणतया प्राण और वीर्य की गति नीचे की ही ओर है। विषयों के सम्मुख होते ही यह नीचे को जाने लगते हैं, किन्तु योगियों के प्राण वश में होते हैं, वे जब चाहें प्राणों को स्वेच्छा से निकाल सकते हैं। सती देवी ने योगाभ्यास से ही शरीर का त्याग किया।

उन्होंने पहिले आसन को दृढ़ किया, फिर प्राण और अपान को समान किया अर्थात् तीनों को मिलाकर नाभि देश में स्थिर किया। नाभि चक्र से उठाकर शनैः-शनैः तत्तद् चक्रों के भूत, देवता, बीजाक्षरों को लय करती हुई प्राणों को हृदय चक्र में लाईं। हृदय से उठाकर कण्ठ में लाईं, फिर भृकुटि के आज्ञाचक्र में लाकर बड़ी सावधानी से स्थिर किया। जो अपरिपक्व योगी होते हैं, उन्हें कण्ठ से इस चक्र में प्राणों को लाने में बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि तनिक भी असावधानी हुई तो प्राण फट से आँख, कान, नाक, मुँह आदि के छिद्रों से निकल जाते हैं। इसलिये कण्ठ चक्र से आज्ञा चक्र में प्राणों को लाने में शीघ्रता नहीं

की जाती, बड़ी सावधानी से जालंधर बन्ध के द्वारा उन-उन द्वारों की नाड़ियों को रोककर आज्ञा चक्र में प्राणों को लाते हैं। वहाँ से वायु को मूर्धा के सहस्रार चक्र में लाते हैं। यदि लोकों के देखने की इच्छा हो तो सूक्ष्म शरीर को लेकर योगी जाता है, और क्रमशः माया के समस्त आवरणों को तोड़ते हुए मुक्त हो जाता है। इसे क्रम मुक्ति कहते हैं। यदि कोई ऐसी इच्छा न हो, तो यही देहात्मा को सर्वान्तर्यामी आत्मा में लीन कर देते हैं।

सतीजी तो मुक्त स्वरूपा ही थीं। उन्हें तो मुक्ति के दाता भगवान् शिव की सेवा प्राप्त थी, इसलिए शरीर में वायु और अग्नि की भावना करके उस शरीर को योगाग्नि में जला दिया। सबके देखते-देखते सती का शरीर भस्म हो गया। वे निर्जीव हो गईं। दशों दिशाओं में हाहाकार मच गया। सभी देव, दानव, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, भूत, प्रेत तथा पिशाच दक्ष को धिक्कार देने लगे। कुछ दक्ष को मारने दौड़े, चारों ओर भीषण उत्पात होने लगे। सभी के हृदय शंका और भय से भर गये। चारों ओर कोलाहल मच गया।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! सती के योगाग्नि में भस्म होते ही यज्ञ की समस्त श्री विलीन हो गई। अब यज्ञ श्मशान भूमि के समान दिखाई देने लगा। सभी के चित्त उदास होने लगे। सभी स्त्रियाँ एक साथ ही हा सती ! करके रुदन करने लगीं। सर्वत्र शोक छा गया। दक्ष का भी मुख उतर गया। वह कुछ स्थिर न कर सका।"

छप्पय–ऐसे कहिकें सती ओढ़िकें पीरी सारी।
युगल नेत्र करि बन्द जगत की सुरति विसारी॥
नाभि चक्र तें प्रान उठाये हिय में लाई।
कण्ठ भ्रुकुटि के मध्य अनिल तें अनल जराइ॥
योगि अग्नि तें तनु तज्यो, लीन भईं शिव ध्यान में।
किन्तु कुटिल पितु दक्ष के, जूँ रेंगी नहिँ कान में॥

दक्ष को धिक्कार तथा शिव गणों का प्रकोप

[१९९]

सोऽयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् च
लोकेऽपकीर्तिं महतीमवाप्स्यति ।
यदङ्गजां स्वां पुरुषद्विडुद्यताम्
न प्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः ॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, ४ अ०, ३० श्लोक)

छप्पय

देख्यो चरित विचित्र डरे सब जग के प्रानी ।
जगत शून्य सम भयो प्रलय बेला सब जानी ॥
धिक्कारें सब लोग दक्ष कूँ देवें गारी ।
सम्मुख दुहिता मरी नहीं बरजी सुकुमारी ॥
पिता नहीं अति पतित यह, शिव द्रोही कलुषित हृदय ।
सिंह व्याघ्रहू सुता लखि, छाँड़ि क्रूरता हौं सदय ॥

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! योगाग्नि में सती के भस्म हो जाने पर सब लोग कहने लगे—यह ब्रह्मद्रोही और कुटिल हृदय दक्ष लोक में अवश्य ही महान् अपकीर्ति को प्राप्त करेगा, क्योंकि जिस शिव द्रोही ने इसी के अपराध से मरने वाली सगी तनया को प्राण त्याग करने से रोका नहीं ।"

कुछ लोग स्वार्थ वश–ईर्ष्या वश–अच्छे कामों की भी निन्दा करते हैं और कुछ भय वश, लोभ वश, दूसरों को प्रसन्न करने के लिये बुरे कामों की भी प्रशंसा करने लगते हैं; किन्तु मनसे सभी पुरुष निन्दित काम की निन्दा तथा प्रशंसित कार्य की प्रशंसा ही करते हैं। यदि ऐसा न हो, तो संसार में शुभ काम करने में किसी की प्रवृत्ति ही न हो, फिर बलिदान का कोई महत्व ही न समझा जाय। परिस्थिति वश कोई कुछ कह लो, किन्तु अन्त में अच्छे कार्यों का आदर और कुत्सित कार्यों का अनादर संसार में होता ही है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! सबके देखते-देखते सती ने योगाग्नि उत्पन्न करके शरीर त्याग दिया। अब उनका शरीर 'इ' शक्ति से रहित 'शव' बन गया। दिशाओं में अन्धकार छा गया सूर्य देव ने लज्जा के कारण मुँह ढक लिया। दिशाओं ने नीहार रूपी घूँघट लगा लिया। भूत, प्रेत, पिशाच हाहाकार करने लगे। गगनचारी देवगण त्राहि-त्राहि करके 'बुरा हुआ, बुरा हुआ!' ये शब्द चिल्लाने लगे। कोई देवाङ्गना कहने लगी—"हाय! देवी सती ने अपना शरीर व्यर्थ ही त्याग दिया।"

दूसरी कहती—"शरीर त्यागने की बात ही थी। विचारी कितने प्रेम से बिना बुलाये पितृस्नेह से दौड़ी आईं। किसी भूखे नंगे घर की भी नहीं थीं। सम्पूर्ण चराचर विश्व के स्वामी भगवान् विश्वनाथ की अर्धाङ्गिनी थीं। उनके साथ दक्ष का ऐसा व्यवहार सर्वथा अनुचित था।"

इस पर कोई कहती—"देखो, कैसा भी क्रूर प्राणी हो; अपने बाल बच्चों पर वह भी स्नेह करता है। सिंह, व्याघ्र, सरभ सभी अपने बच्चों को प्यार करते हैं। सती तो बड़ी उदारचित्ता है, प्राणी मात्र की आदर पात्री है। उनका तिरस्कार करके दक्ष

सुखी नहीं हो सकता। इसकी सर्वत्र अपकीर्ति होगी। सब इसे धिक्कार देंगे।"

इस प्रकार जितने मुँह उतनी ही बातें। लोग भाँति-भाँति की चर्चा कर रहे थे, इधर शिव पार्षदगण सती के प्राण त्याग को देखकर अत्यन्त ही कुपित हुए। एक तो वे पहिले ही अपनी स्वामिनी के अपमान के कारण क्रुद्ध थे। जब उन्होंने प्राण ही त्याग दिये, तब तो उन सबके क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। वे अत्यन्त कुपित हुए और अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर दक्ष को मारने दौड़े। वे यज्ञ को विध्वंस करना चाहते थे। वहाँ के सभी लोगों को मार डालने पर उतारू हुए। उन भूत पिशाचों के ऐसे अभिप्राय को समझकर दक्ष अपने यज्ञ के आचार्य भृगु महर्षि से बोले—"भगवन्! ये भूत, पिशाच, शिव गण तो बड़ा उपद्रव कर रहे हैं। अपने मंत्रों की कुछ सिद्धि दिखाइये, नहीं तो ये यज्ञ को चौपट कर देंगे।"

यह सुनकर महर्षि भृगु बोले—"आप चिन्ता न करें, मेरे मन्त्रों के सम्मुख ये भूत प्रेत कुछ भी नहीं कर सकते! मैं अभी इन सबको भगाये देता हूँ।" यह कहकर भगवान् भृगु ने यज्ञ में विघ्न डालने वालों के नाश करने वाले मन्त्रों को साङ्गोपाङ्ग सस्वर पढ़कर विधिपूर्वक अग्नि में हवन किया। उनके मन्त्रों में अमोघ शक्ति थी, उन्होंने विधिवत् मन्त्रों को सिद्ध किया था। वे कभी भी व्यर्थ जाने वाले मन्त्र नहीं थे। जब उन्होंने उन मन्त्रों द्वारा दक्षिणाग्नि में हवन किया, तो तुरन्त ही यज्ञ कुण्ड से 'ऋभु' नामक देवगण उत्पन्न हुए। वे सोमप थे। यज्ञ में उन्हें सोमपान का अधिकार है, उनका काम ही यह है कि यज्ञ में जो भी आकर विघ्न करे, उसका नाश कर देना। यज्ञ में प्रायः भूत प्रेत, पिशाच, राक्षस आदि तमोगुण प्रधान देवता ही विघ्न करते हैं। उनके नाश के लिये ब्रह्मतेज से देदीप्यमान ये देवगण ही समर्थ

हैं। इसीलिए ये यज्ञ भाग के अधिकारी माने गये हैं। यज्ञ कुण्ड से निकलते ही ऋभुओं ने हाथ में जलती हुई अग्नि लेकर यज्ञ

विध्वंस की इच्छा से आगे बढ़ने वाले शिवजी के गणों को खदेड़ा। उन ब्रह्म तेज से देदीप्यमान् देवों के प्रहार को न सह

सकने के कारण वे सब भाग खड़े हुए। उन्हें भागते देखकर दक्ष को बड़ा सुख हुआ। चलो, एक विघ्न आया था वह भी टल गया। भृगु महर्षि को भी हर्ष हुआ। मेरे मन्त्रों में कितनी शक्ति है कि ये इतने प्रबल गुह्यक, प्रमथ, भूत, प्रेत, पिशाच तथा बैताल आदि मारे डर के दशों दिशाओं में भागे जा रहे हैं। उन्हें यह पता नहीं था, यह क्षण भर का ही शान्ति प्रयोग है।

इस पर विदुरजी ने पूछा—"भगवन्! दक्ष तो प्रत्यक्ष ही अन्याय के पथ पर था। उसका यज्ञ भी दम्भ यज्ञ ही था, शिव के गण सर्व समर्थ थे। उनका क्रोध भी न्याय था। फिर शिव गण पराजित क्यों हुए? इससे तो यही सिद्ध होता है कि न्याय मार्ग पर चलने पर भी धर्म रक्षा नहीं करता।"

यह सुनकर मैत्रेय मुनि बोले—"विदुरजी! आपका प्रश्न गूढ़ है, इसे आप भली प्रकार ध्यान से समझें। यह सत्य है कि दक्ष का यज्ञ द्वेष पूर्ण था, फिर भी उसमें शास्त्रीय विधि भी यथा साध्य बरती ही गई थी। कुछ भी हो देव पूजन आदि शुभ काम हुए तो सही। इस यज्ञ के कारण उसके दम्भ पाखण्ड अहङ्कार का बल और बढ़ा। कर्म निष्फल तो होता नहीं, किसी-न-किसी की वृद्धि तो करेगा ही। जैसे स्वस्थ पुरुष घृत खावे, तो उसके तेज, बल, पराक्रम आदि बढ़ेंगे, किन्तु उसी घृत को यदि दमा आदि रोग ग्रस्त खावे, तो वह घृत शारीरिक बल न बढ़ाकर रोग का ही बल बढ़ायेगा। बलवान् अधर्म निर्बल धर्म को दबा देता है। प्रबल तमोगुण मन्द सतोगुण को ढक लेता है। हिरण्यकशिपु हिरण्याक्ष आदि दैत्य तमोगुण प्रधान ही थे। रात्रि दिन अन्याय, अत्याचार ही करते थे, फिर भी प्रबल तम ने सत्त्व को ढक लिया। देवताओं को उनके सामने से भागना पड़ा। भगवान् को भी देवताओं की प्रार्थना पर उनसे कहना पड़ा—"अभी भैया, उसका समय है, अभी मैं उसे नहीं मार सकता।

समय आने पर वह आपसे आप मारा जायगा, अभी काल की प्रतीक्षा करो।" जब उसका तम प्रह्लाद के प्रबल सात्त्विक भाव से ढक गया, तो भगवान् ने तुरन्त खम्भे से निकलकर सबके सम्मुख हिरण्यकशिपु को मारा। इसीलिये कहावत है—"संसार में दुर्बलों की गति नहीं, प्रबलता में ही सिद्धि है।" निर्बल आदमी बैर करे, तो उसका विनाश हो जायगा, किन्तु बैर भी करे तो प्रबल के साथ, शत्रुता भी करे तो अत्यन्त पराक्रमी के साथ। बहुत असुर बैर भाव से भगवान् से शत्रुता करके मुक्त हो गये।

दक्ष का अभिमान, प्रभाव, ऐश्वर्य इन साधारण भूत पिशाचों से प्रबल था। इसलिये शिवगण पराजित होकर भाग गये। जब इन सबसे पराक्रमी शिवगण आवेंगे, तो इन सबका तेज हत हो जायगा, ये सब अपनी करनी का फल पावेंगे। सबकी ठुकाई होगी, शिवगण चुन-चुनकर सबकी मरम्मत करेंगे।"

यह सुनकर विदुरजी ने कहा—"हाँ, महाराज! बात मेरी समझ में आ गई। जय-पराजय प्रबलता के ही ऊपर अलम्बित है। अन्त में विजय तो धर्म की ही होती है, क्योंकि धर्म अधर्म से बड़ा है। तो भी समयानुसार कभी-कभी अधर्म का भी प्राबल्य हो जाता है। हाँ, तो फिर क्या हुआ?"

इस पर मैत्रेयजी बोले—"विदुरजी? फिर क्या हुआ? जो होना था, वही हुआ। बैर का परिणाम है, कलह। कलहरूपी वृक्ष के फल हैं मार-काट, लड़ाई-भिड़ाई, रक्तपात। वही अन्त में हुआ।"

देवर्षि नारदजी को तो इधर की बात उधर कहने में आनन्द ही आता है। सती के भस्म होते ही नारदजी ने अपनी वीणा उठाई और लँगिया-पैंयाँ दौड़े-दौड़े शिवजी के समीप पहुँचे।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! सदाशिव भोलेनाथ अपनी

प्राणप्रिया सती के सम्बन्ध में ही सोच रहे थे कि नारदजी ने जाकर श्रीशिव के चरणारविन्दों में प्रणाम किया।"

छप्पय

सती देह निर्जीव लख्यो शिवगण रिसियाने।
यज्ञ नाश हित चले अस्त्र निज-निज सब ताने॥
भृगुने देखे भूत भयंकर विघ्न करिङ्गे।
यज्ञ करहिँ विध्वंस दक्ष के प्रान हरिङ्गे॥
यज्ञ विघ्न नाशक ऋचा, पढ़ी प्रकट ऋभु सुर भये।
उनने मारे शम्भु गण, भये पराजित भगि गये॥

शिवजी को क्रोध तथा वीरभद्र की उत्पत्ति

[२००]

भावो भवान्या निधनं प्रजापते-
रसत्कृताया अवगम्य नारदात् ।
स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभि-
र्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, ५ अ०, १ श्लो०)

छप्पय

भूत प्रेत उत भगे, भगे इत नारद हर पै ।
देखे बिभु विश्वेश विराजे हिमगिरिवर पै ॥
करी वन्दना बिलखि विनयतें बोले बानी ।
पिता करयो अपमान जरी योगाग्नि भवानी ॥
तब पार्षद गण अस्त्र लै, युद्ध करन उद्यत भये ।
किन्तु करे भृगु प्रकट ऋभु, तिन्हें देखि गण डरि गये ॥

सम्मुख रहने पर प्रेम बिखर जाता है, उसका अनुभव नहीं होता—जैसे किसी व्यापारी के रुपये हैं, अनेक स्थानों में कार-

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! अब नारद से शिवजी ने प्रजापति दक्ष से अपमानित होकर सतीजी ने शरीर त्याग दिया और हमारे पार्षदों की सेना को यज्ञ में उत्पन्न हुए ऋभु नामक देवताओं ने खदेड़ दिया, यह समाचार सुना तो इसे सुनते ही उन्हें अपार क्रोध हुआ ।"

बारों में लगे हैं; यद्यपि वे सभी उसके अधीन हैं, किन्तु बिखरे होने से उनकी गुरुता प्रतीत नहीं होती। जब वे ही सब रुपये इकट्ठे हो जायँ, तब ज्ञात होता है--ओहो, इतना धन मेरे पास है। अपना प्रेमास्पद सम्मुख रहता है, तो कभी चित्त उसके सुमधुर हास्य में फँस जाता है, कभी उसकी अमृत से सनी मधुमय कानों में सञ्जीवनी घोरने वाली वाणी में लुभा जाता है, कभी उसके सुन्दर शरीर की सुगठन में भूल जाता है, कभी उसके सौन्दर्य, माधुर्य में अपनेपन को खो बैठता है, जैसे कोई कितना भी भूखा हो, उसके सामने अनेक थाली में बहुत से व्यञ्जन एक साथ भरकर रख दें, तो वह जितना खाना चाहिये, उतना नहीं खा सकता। उन इतने पदार्थों को देखकर ही उसका चित्त भर जायगा। भूख का महत्व भोजन के दूर रहने पर, उसके न मिलने पर मालूम होता है। प्रेमी के दूर होने पर वह चित्त में सदा बना रहता है, चित्त से मिलने से जो प्रेम उमड़ता है; वह प्रत्यक्ष मिलने में नहीं उमड़ता। मनुष्य के गुणों का महत्व उसके पीछे ही जाना जाता है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! यद्यपि सतीजी शिवजी से बिना ही कहे, शिवजी के मना करने पर भी हठपूर्वक स्वेच्छा से-शिवजी की आज्ञा की अवहेलना करके-चली गई थीं। उस समय शिवजी को उनकी इस त्रियाहठ के कारण क्षोभ भी हुआ और वे उनकी ओर से उदासीनवत् भी हो गये थे, किन्तु जब आकर नारदजी ने उनके विनाश की बात बताई, तब तो शिवजी अपने आपको न रोक सके। सती के योगाग्नि में भस्म होने के समाचार से ही उनके हृदय में सती का प्रेम उमड़ पड़ा। हाय! मेरी प्रिया! जिसे मैंने अपना आधा अङ्ग दे दिया था, वह अपने आप योगाग्नि उत्पन्न करके भस्म हो गई और हुई भी दक्ष के अपमान के कारण। दक्ष अब इतना बढ़ गया है, वह मेरे कारण

अपनी सगी पुत्री को भी शत्रु के समान समझता है। मैं अपने अपमान को तो सह सकता हूँ, किन्तु अपने भक्त के अपमान को सहन नहीं कर सकता। मेरे साथ द्रोह करे, तो उसका तो किसी भाँति निस्तार हो भी सकता है, किन्तु मेरे भक्त का अपराध करके कोई किसी भी प्रकार बच नहीं सकता। आज मैं दक्ष के अभिमान को नष्ट करूँगा, उसके गर्व को खर्व कर दूँगा। उसके बढ़े हुए मद को चूर्ण कर डालूँगा। उसे अपने कर्म का फल चखाऊँगा, उसे बताऊँगा कि सती का अपमान करके किसी का भी कल्याण नहीं हो सकता। इस प्रकार सोचते ही भगवान् रुद्र को क्रोध आ गया। उनके भुजदण्ड फड़कने लगे। आँखें लाल हो गईं, दोनों भ्रुकुटियाँ तन गईं, दाँतों से ओठ चबाते हुए, उन्होंने अपनी पीली-पीली सुवर्ण वर्ण की विद्युत के समान चमकती हुई, जटाओं के बालों में से एक बाल उखाड़कर वेग के साथ पृथ्वी पर पटका। उसके पटकते ही शिवजी के समान ही एक बड़ा भयङ्कर पुरुष उत्पन्न हो गया। वह पुरुष क्या था, मानों कोई हिमालय का श्रेष्ठ शिखर ही सजीव होकर शिवजी के सम्मुख खड़ा हो गया हो। उसने अपने विशालकाय से दशों दिशाओं को रुद्ध कर लिया था, उसका मुकुट गगन को चुम्बन कर रहा था। नीलाञ्जन पर्वत के समान वह श्याम वर्ण का था। वह ऐसा लगता था मानों कोई जल भरा मेघ पृथ्वी से स्वर्ग तक खड़ा हो गया हो। उसका मुखमण्डल विशाल चौड़ा और भयङ्कर था। उसमें तीन नेत्र उसी प्रकार चमक रहे थे, मानों सूर्य चन्द्र और अग्नि तीनों एक साथ ही किसी पर्वतशिखर से चमक रहे हों। उसके एँड़ी तक लटकने वाले हिलते हुए लाल-लाल केश ऐसे प्रतीत होते थे, मानों अग्नि की लपटें साकार बनकर किसी गिरिशृङ्ग पर चढ़ रही हों। विशाल गिरिगुहा के समान उसका मुख था, उसमें हल की फार के समान तीक्ष्ण दाढ़ें चमक

रही थीं। उसके हजारों हाथ थे, जिनमें भाँति-भाँति के अस्त्र-शस्त्र धारण किये, वह उस विशाल वट के समान दिखाई देता था, जिसकी डाल पर बैठकर गरुड़जी ने गज और कच्छ को खाना

चाहा था, जिसकी डालियाँ सौ-सौ योजन लम्बी थीं, जिन पर उलटे लटके हजारों बालखिल्य मुनि तपस्या कर रहे थे। नारद जी तो उसके ऐसे रूप को देखकर डर गये। उन्होंने चुपके से

अपनी वीणा उठाई और एक दो तीन हुए। शिवजी को प्रणाम करना भी भूल गये। रुद्र का बेटा ही ठहरा, कहीं इधर से ही श्री गणेश करना आरम्भ कर दिया, तो लेने के देने पड़ जायँगे। जब हाँफते हुए नारदजी दूर चले गये, तब उन्होंने कहीं वीणा के स्वरों पर उँगली चलाई और तब स्वस्थचित्त होकर जय-जय रामकृष्ण हरि की ध्वनि लगाई।

इधर वीरभद्र ने उत्पन्न होते ही चारों ओर देखा; मानो वह त्रिलोकी को निगलने के लिये उद्योग कर रहा हो। अपने आस-पास किसी को न देखकर वह हाथ जोड़कर बड़ी दीनता के साथ शिवजी से बोला—"प्रभो! मुझे आपने किस लिये उत्पन्न किया है? मेरे लिये आप क्या काम बताते हैं। आपकी आज्ञा हो तो मैं सातों समुद्रों के जल को अभी सोख जाऊँ। आपकी आज्ञा हो तो सुमेरु पर्वत को उखाड़कर उसका चूर्ण कर डालूँ। आपकी आज्ञा हो, तो मैं तीनों लोकों का नाश कर दूँ। मुझमें सब सामर्थ्य है, मैं पृथ्वी को उठाकर उसे रसातल में पहुँचा सकता हूँ। दिग्गजों के दातों को पकड़कर मसल सकता हूँ। लोकपालों की पुरियों को उखाड़कर रसातल में पहुँचा सकता हूँ। प्रलय का समय न होने पर भी मैं प्रलय कर सकता हूँ।"

वीरभद्र की ऐसी वीरता भरी बातें सुनकर सदाशिव उस पर प्रसन्न होते हुए बोले—"इस समय प्रलय करने का मेरा विचार नहीं है। जिस दुष्ट दक्ष के कारण मेरी प्राणप्रिया सती ने अपने दुस्त्यज प्राणों को भी त्याग दिया है, उसको जाकर तुम मार डालो। उसके दम्भ यज्ञ को विध्वंस कर दो। उसकी हाँ-में-हाँ मिलाने वाले जितने भी उसके अनुयायी तथा पिट्ठू हैं, उन सबको दण्ड दो। सती का अपकार करने वाले का अंत कर दो। तुम डरना मत। तुम मेरे अंश से उत्पन्न हुए हो। आज से तुम

मेरे गणों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाओगे। मेरे जितने प्रधान-प्रधान पार्षद हैं, उन सबका मैं तुम्हें अध्यक्ष बनाये देता हूँ। तुम सती के बाप से बदला लो, उसके अपराध का उसे दण्ड दो।"

इतना सुनते ही वीरभद्र प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोला—"केवल इतने से छोटे काम के लिये आपने मुझे उत्पन्न किया है। मैं तो तीनों लोकों का संहार करके में समर्थ हूँ। दक्ष मेरे सम्मुख क्या वस्तु है। वह है किस खेत की मूली? मैं उसके यज्ञ को, उसके अनुयायियों को, उसके सगे सम्बन्धियों और हाँ-में-हाँ मिलाने वालों को नाश करके अभी आपके चरणों में आता हूँ।"

मैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इतना कहकर वीरभद्र ने भगवान् शिव की परिक्रमा की। उन्हें श्रद्धासहित प्रणाम करके वह दक्ष-यज्ञ की ओर चल दिया।"

छप्पय

करयो कपरदी कोप अधर दाँतनि तैं काटैं।
चढ़ी भ्रुकुटि मुख लाल ओठ जिह्वा तैं चाटैं॥
भरिकैं रिस में एक जटा तैं बारु उखारयो।
कटकटाइ कें दाँत पट्ट पृथिवी पै मारयो॥
मारत ई अति विकट वर, कारो अंजन गिरि सरिस।
प्रकट्यो भीषण सहसभुज, घेरी तनुतें दशों दिस॥

दक्ष-यज्ञ विध्वंस के लिये वीरभद्र का गमन

[२०१]

अन्वीयमानः स तु रुद्रपार्षदै-
भृंशं नदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवम् ।
उद्यम्य शूलं जगदन्तकान्तकम्
स प्राद्रवद् घोषणभूषणाङ्घ्रिः ॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, ५ अ०, ६ श्लोक)

छप्पय

बोल्यो—हे विश्वेश ! बताओ किनकूँ मारूँ ।
सोखूँ सबई सलिल सकल संसार संहारूँ ॥
रुद्र कोप करि कहे—अस्त्र अपने संहारो ।
दक्षयज्ञ में जाइ दक्षकूँ अबई मारो ॥
सुनत भयङ्कर रुद्रगण, हा-हा हू-हू करि चले ।
कर कङ्कण माथे मुकुट, कटि किंकिणि माला गले ॥

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! वीरभद्रजी बहुत से रुद्रपार्षदों से घिरे हुए तथा उन पार्षदों के भीषण नाद करने पर स्वयं भी भयंकर गर्जना करते हुए हाथ में ऐसा भयंकर त्रिशूल लिये हुए, जो जगत् के अन्त करने वाले काल का भी अन्त कर सकता था; उसे ताने हुए दक्ष के यज्ञ की ओर लपके। उस समय शीघ्रता से दौड़ने के कारण उनके पैरों में छम-छम नूपुरों का शब्द हो रहा था।"

कहावत है--"एक तो गिलोय स्वयं ही कड़वी, तिस पर भी नीम चढ़ी" फिर उसकी कड़वाहट का क्या पूछना है। रुद्र स्वयं ही संहारक हैं। क्रोध की मूर्ति ही हैं, फिर क्रोध करके नाश करने की इच्छा से जिन्हें उत्पन्न किया, उन वीरभद्र के कोप के सम्बन्ध में तो पूछना ही क्या? वीरभद्र मूर्तिमान् प्रलय के समान दिखाई देते थे, उनके भयंकर रूप और क्रोध से लाल, तमतमाये हुए मुखमण्डल को देखकर संसार के सभी प्राणी थर-थर काँपने लगे। उस समय वे प्रत्यक्ष प्रलयाग्नि ही दिखाई देते थे।

मैत्रेय मुनि कहते हैं--"वीरभद्र ने जब दक्ष-यज्ञ विध्वंश करने के लिये भगवान् भूतनाथ की आज्ञा पाई, तो वे अपने हजारों हाथों में हजारों विविध प्रकार के अस्त्र लिये, चलने को उद्यत हुए। तब उन्होंने सिर नवाकर श्रद्धासहित शिवजी से पूछा--"प्रभो! मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ, मेरे साथ अन्य शिवगणों तथा पार्षदों की क्या आवश्यकता है?"

शिवजी ने कहा--"नहीं, सेना सहित जाओ ठाट-बाट से। भीड़ भड़क्के के साथ जाने से प्रभाव जम जाता है कि ये भी कोई भारी भरकम व्यक्ति हैं। अकेले चुपचाप चले गये, किसी ने जाना, किसी ने न जाना; इसलिये मेरे सब गणों और पार्षदों को लेकर कोलाहल करते हुए, पृथ्वी को कँपाते, सबको डराते धमकाते, दक्ष के स्वजनों को भयभीत करते, गाते नाचते चिल्लाते हुए जाओ।"

वीरभद्र ने हाथ जोड़कर कहा—"बहुत अच्छा, महाराज।"

तब उन्होंने नन्दी, भृङ्गी सभी को आज्ञा दी; सेना तैयार हो। काली, करालो खप्पर वाली सब तैयार हों। सभी रुद्र पार्षद अपना वेष बनाकर युद्ध के लिये सन्नद्ध हों।"

वीरभद्र की आज्ञा पाते ही सभी ने अपने-अपने शरीर पर

भस्म लगाई; रुद्राक्ष की मालायें धारण कीं। सभी के सिर पर चन्द्रमा शोभा दे रहा था, सभी बैल पर चढ़े थे। सभी के तीन-तीन नेत्र थे। इस प्रकार सज-धजकर भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, साकिनी, प्रथम, गुह्यक, कूष्माड, कर्पट, वटुक भैरव, ब्रह्मराक्षस, क्षेत्रपाल, विनायक, यक्ष, राक्षस सभी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर कोलाहल करते हुए चलने को उद्यत हुए। चौंसठ योगिनियाँ अपने-अपने खप्परों को सम्हालकर, केश बखेरकर, जिह्वा को लपलपातीं, त्रिशूलों को घुमाती दाँतों को दिखातीं, ओठों को चाटती हुई चलीं। आगे-आगे काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी ये नव दुर्गायें किलकारियाँ मारतीं चलीं। भूत, प्रेत हा-हा, हू-हू करके दिशाओं को कँपा रहे थे। सभी बड़े उत्साह में भरे थे, सती के नाश से सबके रग-रग में क्रोध व्याप रहा था। सभी रक्त पान के प्यासे से दिखाई देते थे। इस प्रकार सब साज-बाज अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर शिव पार्षद गण, कनखल की ओर चल पड़े। वे वायु वेग से भी अधिक द्रुतगति से जा रहे थे। सभी दक्ष का अन्त करने के लिये उतावले हो रहे थे। सबसे आगे अपने पैरों के नूपुरों को छम-छम बजाते, त्रिशूल घुमाते, शिव पार्षदों का उत्साह बढ़ाते, दिशाओं को कँपाते, धूलि उड़ाते, अत्यधिक उत्साह दिखाते वीरभद्र चल रहे थे। उस समय उनका वेग असह्य था, कोई उसका सामना नहीं कर सकता था। इस प्रकार क्षण भर में वे यज्ञशाला के समीप पहुँच गये।

इधर रुद्र-पार्षदों के पराजित होने से प्रसन्न हुए प्रजापति और उनके पुरोहित पिट्ठू यज्ञ के कार्य को पुनः आरम्भ करने का उपक्रम कर रहे थे, इतनी ही देर में उत्तर दिशा से उन सबको बड़ा भारी कोलाहल सुनाई दिया, साथ ही समुद्र के भीषण वेग के समान उड़ती हुई धूलि भी दिखाई दी। इस

कोलाहल और धूलि को देखकर सबकी सिटिल्ली भूल गई। यज्ञ में बैठे हुए ऋत्विज, यजमान, सदस्य तथा अन्य ब्राह्मण और अतिथि सभी घबड़ा गये। पुरुष से अधिक भयभीत स्त्रियाँ हुईं। वे परस्पर में भय से कातर हुईं उसी ओर देखतीं, आपस में भाँति-भाँति की तर्कनाये करने लगीं। कोई कहती--"यह कोलाहल कहाँ से सुनाई दे रहा है; दूसरी कहती--"यह कहीं अग्नि लग गई है, उसी में जलकर असंख्यों प्राणी हाहाकार कर रहे हैं।" दूसरी उसका खण्डन करती हुई कहती--"नहीं अग्नि नहीं है, यह तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है, धूलि है। किन्हीं के पदाघात से धूलि उड़ रही है।"

इस पर दूसरी कहती—"धूलि उड़ने का तो कोई कारण दिखाई देता नहीं। आँधी आने का तो समय नहीं, आसार नहीं। यह कहो कि चोर-डाकुओं का झुण्ड लूट-पाट करते हुए आ रहा हो, सो दक्ष प्रजापति के रहते, चोरों का इतना साहस नहीं हो सकता। चोर तो रहे ही नहीं। गौओं के समूह के आने से भी उनके खुरों से धूलि उड़ती है, सो इस समय गौओं के आने का समय नहीं। गोधूलि की बेला में ही ऐसी धूलि उड़ती है।"

स्त्रियों की ऐसी बातें सुनकर दक्ष प्रजापति की पत्नी प्रसूति को बड़ा दुःख हुआ। वह अपनी सबसे प्यारी पुत्री सती की मृत्यु से अत्यन्त दुखित थीं। दक्ष का अपनी सगी पुत्री के साथ ऐसा व्यवहार उन्हें बहुत बुरा लगा। अत्यन्त खिन्न मन से वे बात करती हुई स्त्रियों से बोलीं—"यह न आँधी है न गौओं के पैरों की धूलि, न यह डाकुओं के दल का हाहाकार है और न किसी शत्रु राजा की सेना का कोलाहल, यह तो शिवजी का मूर्तिमान् कोप ही शरीर धारण करके हम सबका विनाश करने के निमित्त आ रहा है। शिवजी क्रुद्ध होकर हमारा सर्वस्व नाश करेंगे। क्रुद्ध होने की बात ही है; बिचारी निरपराधा सती का उसकी सब

बहिनों और मौसियों के सम्मुख तथा समस्त नर-नारियों के देखते हुए प्रजापति ने घोर अपमान किया। इसी के कारण कपर्दी क्रुद्ध हुए हैं। अब हम सबका कल्याण नहीं। उनके कोप से बचने का कोई उपाय नहीं।"

इस पर किसी आश्रिता स्त्री ने कहा—"हमारे महाराज किसी से कम हैं क्या? यदि कोई उनके यज्ञ में विघ्न डालेगा, तो वे भी उसका प्रतीकार करेंगे। अभी सबने प्रत्यक्ष देखा है। भूत, प्रेत, पिशाच, गण हमारे स्वामी की ओर क्रुद्ध होकर दौड़े थे। भगवान् भृगु ने बात-की-बात में अपने मंत्रों के प्रभाव से उन्हें भगा दिया। सभी सिर पर पैर रखकर भागते ही दिखाई दिये, यदि अब फिर कोई आवेंगे, तो उन्हें भी इसी तरह मुँह की खानी पड़ेगी। वे भी पराजित होकर भाग जायँगे।"

इस पर प्रसूति महारानी बोलीं—"यह अबके जो आ रहा है, वह तो शिवजी का साक्षात सजीव क्रोध है, यह भागने वाला नहीं। शिवजी के सम्मुख ठहरने की सामर्थ्य किसमें है? सृष्टि के अन्त में अपने जटा-जूट को बखेर कर, तीसरा नेत्र खोलकर, जब शिवजी कोप करते हैं और अपने त्रिशूल की नोक में दिग्गजों को छेदकर विश्व के संहार में प्रवृत्त होते हैं; उस समय उनके वेग को रोकने की सामर्थ्य किसमें है? जब वे अपने अट्टहास से दशों दिशाओं को कम्पायमान करते हुए त्रिशूल को उठाकर, डमरू को बजाकर, गज-चर्म को हिलाकर, जटाओं को फैलाकर नृत्य करते हैं; उस समय उनके असह्य पराक्रम को सहन करने की शक्ति संसार में किस शरीर धारी को हो सकती है। उनकी भ्रु कुटि-विलास से उत्पन्न हुई प्रलयाग्नि के सम्मुख ठहरने की सामर्थ्य किसमें है? जो अपनी विकराल कराल दाढ़ों के बीच में असंख्यों ब्रह्माण्डों को चबेने की तरह चूर्ण करके चबा जाते हैं, उन कुपित हुए क्रोध की मूर्ति भगवान् विश्वनाथ के वेग के

सम्मुख विधाता भी नहीं ठहर सकते। फिर प्रजापति और उनके अनुयायियों की तो बात ही क्या है ?"

इस प्रकार दक्ष की यज्ञशाला में बैठी हुई स्त्रियाँ वीरभद्रजी की सेना के वेग के सम्बन्ध में विविध-भाँति की बातें कर रही थीं कि इतने ही में उन सबने देखा कि अपने मुकुट से स्वर्ग को स्पर्श करते हुए अपने सहस्रों हाथों में विविध अस्त्र धारण किये, शिव-गणों और रुद्र-पार्षदों से घिरे हुए वीरभद्रजी दिखाई दिये। उनके साथ के शिव-गण विचित्र प्रकार के थे, उनके रूप भयानक थे। आकृति डरावनी थी। उनमें कोई छोटे थे, कोई मोटे थे, किसीके पीले नेत्र थे, किसी के तीन नेत्र थे, तो किसी के पाँच, सात, ग्यारह, सौ और हजार दो हजार नेत्र थे। कोई बौने थे, कोई ठिगने थे, कोई लम्बे थे, कोई इकहरे थे। किसी का गधे के समान मुख था, तो कोई सूअर की आकृति का था। किसी के ओठ कटे थे, तो किसी के ओठ पैरों तक लटक रहे थे। किसी के दो सिर थे, तो किसी के दस, बीस सौ सिर थे, कोई सिरहीन था, तो किसी के पेट में ही सिर था। कोई हँस रहे थे, कोई गा रहे थे, कोई रो रहे थे, कोई चिल्ला रहे थे। कोई मारो, काटो, पकड़ो, धकड़ो, ऐसे शब्द कर रहे थे। उनके वाहन विचित्र थे। कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर, कोई ऊँट, खच्चर, गदहा, सियार, मृग, कुत्ता, भेड़िया, सिंह, व्याघ्र, चूहा, गिरगिट, कबूतर, उल्लू तथा ऊदबिलाव पर चढ़े थे। उनकी आकृतियाँ विचित्र थीं। कोई मुँह बिरा रहे थे, कोई गाल बजा रहे थे, कोई आँखें निकाल कर स्त्रियों को डरा रहे थे, कोई ताकधिना धिन, ताकधिना धिन, ताकधिना धिन—ऐसी ताल लगाकर, मुँह मटकाकर, रुद्राक्ष सटकाकर ताण्डव—नृत्य कर रहे थे। उन्होंने आते ही अब गिना न तब, किसी से बिना कुछ पूछे-ताछे चारों ओर से यज्ञ-मण्डप को घेर लिया।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! जब इस प्रकार रुद्र के पार्षदों ने यज्ञ-मण्डप की मोरचेबन्दी कर ली, तो वहाँ बैठे हुए सभी स्त्री पुरुष, डर के कारण थर-थर काँपने लगे। सभी ने समझ लिया, अब कल्याण नहीं। अब तो दक्ष के कारण हम सबके प्राण जायँगे ही। ऐसा सोचकर सब लोग इधर-उधर भागने लगे। यज्ञमण्डप में सर्वत्र भगदड़ मच गई।"

छप्पय

भूत प्रमथ, वैताल, विनायक, बटुक, डाकिनी।
गुह्यक, कर्पट, क्षेत्रपाल सँग चलीं साँकिनी॥
नव दुर्गाऊ चलीं कोप करि गर्जत तर्जति।
वीरभद्र के संग नगनि मग मर्दति फर्दति॥
बिकट वेष बाहन विविध, भीषण कोलाहल करहिँ।
वीरभद्र सेना निरखि, नर-नारी सबई डरहिँ॥

रुद्र पार्षदों द्वारा दक्ष-यज्ञ का विनाश

[२०२]

सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः ।
तैर्ह्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाद्रवन् ॥
जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान् भवः ।
भृगोर्लुलुभ्रे सदसि योऽहसच्छ्मश्रुदर्शयन् ॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, ५ अ०, १८, १९ श्लोक)

छप्पय

आव गिन्यो नहिँ ताव जज्ञ की आगि बुझाई ।
ऋत्विज लीन्हें पकरि धमाधम करी कुटाई ॥
भृगु की दाढ़ी मूँछ सफाचट करी उखारी ।
भग की फोरी आँखि बतीसी पूषा झारी ॥
प्रजापतिनि के जज्ञ में, जिनि जैसे शिवकूँ लख्यो ।
दक्ष-यज्ञ में तिननि तस, तत्छिन ताको फल चख्यो ॥

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! रुद्र पार्षद गण यज्ञ में उपस्थित समस्त ऋत्विज् सदस्यों तथा देवताओं के ऊपर कङ्कड़ पत्थरों की भयंकर वर्षा करके भयंकर पीड़ा पहुँचाने लगे । वे सब पीड़ित हुए वहाँ से भागने लगे । तब भगवान् वीरभद्र ने हाथ में स्रुवा लेकर हवन करते हुए भृगु महर्षि की दाढ़ी मूँछ उखाड़ ली, क्योंकि उन्होंने प्रजापतियों के यज्ञ में अपनी मूँछे मटका कर भगवान् शंकर को हँसी उड़ाई थी ।"

मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है, यदि हम किसी को रुलाते हैं, तो हमें भी आँसू बहाने पड़ते हैं, यदि हम किसी को दुःख देते हैं, तो हमें भी महान् क्लेश उठाना पड़ता है, यदि हम किसी की निन्दा करते हैं, तो हमें भी संसार में निन्दित होना पड़ता है, यदि हम किसी के लिये खाईं खोदते हैं, तो हमारे लिये भी कुँआ तैयार हो जाता है। पक्के घर में जैसी ध्वनि करोगे, वैसी ही प्रतिध्वनि आवेगी। यह संसार का ध्रुव सिद्धान्त है। आज हम जब दूसरों की हँसी उड़ाते हैं, तो इस बात को भूल जाते हैं, हमारी ये सब बातें किसी बड़े कार्यालय में लिखी जा रही हैं; हम दूसरों को दुःख देते समय, दूसरों की निन्दा करते समय अन्धे हो जाते हैं। आगे चलकर जब हमारे ऊपर भी वही बीतती है, तब हमें चेत होता है—"अरे, हमें यह किस पाप का फल मिल रहा है।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं--"विदुरजी! प्रजापतियों के यज्ञ में भृगुजी ने अपनी दाढ़ी हिलाकर दक्ष की हाँ-में-हाँ मिलाई थी, भग ने आँखें मटकाई थीं। पूषा ने शिवजी का उपहास करते हुए दाँत दिखाकर अट्टहास किया था। ये लोग समझते थे कि हमारी इन बातों को कौन देख रहा है; किन्तु नन्दीश्वर तो सब बातें अपने हृदय में लिखते थे। वे सोच रहे थे कि अवसर आने पर ये सब समझे जायँगे आज जब शिव पार्षदों ने दक्ष के यज्ञ पर धावा बोला, तब नन्दीश्वर को प्रजापतियों के यज्ञ की सब बातें फिर से स्मरण हो आईं।

रुद्रगण सब उन्मत्त थे, सभी क्रोध में भरे हुए थे, सभी उद्दण्ड थे, सभी विकृत वेष वाले थे। उन्हें सभ्यता-असभ्यता से क्या प्रयोजन? मद में भरे वे सब भूत, प्रेत, पिशाच निर्भय होकर यज्ञ मण्डप में घुस गये और जाते ही उन्होंने तोड़-फोड़ आरम्भ कर दी। यज्ञशाला के और पश्चिम के खम्भों पर, जो

पूर्व पश्चिम का आड़ा खम्भा था, सबसे पहिले तो भूतों ने उसे तोड़ा; फिर उसके पास ही यजमान की पत्नी के लिये जो शाला बनी थी, उसे छिन्न-भिन्न किया। बहुतों ने वेदियों को तोड़ना आरम्भ किया। कुछ उतावले भोजनशाला में घुस गये। वहाँ की सुगन्धि से वे तोड़ना-फोड़ना भूल गये; कोई लड्डुओं को ही मुँह में भरने लगे। किसी ने हलुए के कढ़ाये में जो हाथ मारा कि गरम-गरम हलुए से उसका हाथ जल गया। वह हाथ को हिलाता हुआ भागा। किसी ब्रह्म-राक्षस को पता चल गया, वह तो हलुए की विधि जानता था, क्योंकि वह भी पहिले वेदज्ञ ब्राह्मण था, विधिहीन यज्ञ कराने से ही ब्रह्मराक्षस हुआ था। उसने कढ़ाये को पटक दिया, पटकने से सब हलुआ फैल गया, ठण्डा हो गया। सब गप्फा मारने लगे। कोई रबड़ी पीने लगा। कोई बालू-साई उड़ाने लगा। कोई प्रेत किसी को दाल की भरी टोकनी में ही ढकेल देता, कोई रायते के बड़े भारी मटके में ही किसी को डुबा देता, आँखों में लाल मिरचा लगने से वह भागता और हा बप्पा! कहकर नाचने लगता। कोई खस्ता कचौड़ियों को ही सूखी चबाने लगे। कोई भात पर ही पिल पड़े, कोई साग को उछालने लगे, कोई बनी बनाई पलती सोंठ को पेट पर ही मलने लगे, कोई अचारों को उड़ाने लगे, कोई अदरक चबाकर थू-थू करने लगे। जिसे जो मिलता वही उसे खाने उड़ाने लगता। अब वे यज्ञ विध्वंस करना तो भूल गये, जिस वस्तु को देखते, उसे ही मुँह में डालते, एक दूसरे के हाथ से छीनते, कोई किसी को ढकेलता, कोई किसी को पृथ्वी पर पटक देता; प्रेत, पिशाच ही ठहरे। वहाँ लड़ाई-झगड़ा, खान-पान, हा-हा हूँ-हूँ हँसी विनोद यही मच गया। वीरभद्रजी ने देखा, ये पेटू प्रेत पिशाच स्वादिष्ट पदार्थों पर पिल पड़े; अतः वे उन्हें डाटते हुए बोले—"अरे, तुम लोग बड़े पेटू हो रे! तुम दरिद्री ही रहे। जिस काम को आये

हो उसे करो। खाने को कोई मना करता है।" यह सुनकर सभी भोजनालय से दौड़े। किसी के पेट पर सौंठ लगी थी, कोई दाल से सना था, किसी के बाल रायते में भीगे थे, कोई अभी तक लड्डुओं को निगल रहा था, किसी को अधिक दही बूरा और रायता पी जाने से लघुशंका की इच्छा हुई। प्रेत तो प्रेत ही ठहरे, वहीं खड़े-खड़े मूतने लगे। कोई अधिक खा गया था उसके पेट में दर्द-सा उठने लगा, उसने कुण्ड में ही सबके सामने मल त्याग कर दिया। उन सबकी ऐसी घृणित चर्या देखकर ब्राह्मणों और ऋत्विजों ने आँखें बन्द कर लीं। खा-पीकर शिवगण और भी अधिक उद्दण्ड हो गये। उन्होंने बनी हुई पीठों को तोड़-फोड़कर बराबर कर दिया। यज्ञ कुण्ड की ईंटें उखाड़ डालीं, वेदी के सीमासूत्रों को सट्ट-सट्ट तोड़ दिया। बहुत से यज्ञ कराने वाले मुनियों को पकड़ने लगे। बहुत से मुँह मटकाकर, दाँत निकालकर घुड़की देकर स्त्रियों को डराने लगे, स्त्रियों में भगदड़ मच गई। एक दूसरे के ऊपर गिरने लगीं। बड़ी बूढ़ी गिरकर पिचने लगीं। वे अपने मुँह से बार-बार कहतीं—"अरी भैनाओ! मोइ च्यों दबावति हो।" किन्तु उनकी सुनता कौन, सभी उनके पेटों पर पैर रखकर भागने लगीं। छोटे-छोटे बच्चे रोने और चिल्लाने लगे, किन्हीं की चूड़ियाँ फूट गईं, किन्हीं-किन्हीं की आरसियाँ टूट गईं, किन्हीं के बिछुए गिर पड़े, किन्हीं के बाल खुल गये, कोई चिल्लाने लगीं। कोई रोने लगीं। कोई घबड़ाकर मूर्छित हो गईं। कोई सबको समझाने लगीं; कोई गिरी हुई बुढ़ियों को उठाने का प्रयत्न करने लगीं। स्त्रियों में चारों ओर हाहाकार मच गया। स्त्रियों को इस प्रकार भयभीत देखकर वीरभद्र ने दूर से ही अपना लम्बा हाथ उठाकर कहा—"देखो, खबरदार! किसी ने स्त्रियों का अपमान किया, तो फिर मुझसे बुरा कोई नहीं है। स्त्रियाँ सर्वदा सब काल में अवध्य मानी गई हैं, उनका कोई अप-

मान न करें। इन दक्ष के पिट्ठुओं की मरम्मत करो, इन्हें अपने किये का फल चखाओ।"

इतना सुनना था कि सभी यज्ञ कराने वालों के ही ऊपर टूट पड़े। किसी ने ऋत्विजों को पकड़ा, कोई होताओं को बाँधने लगा, किसी ने अध्वर्यु को थर दबोचा, किसी ने यज्ञ के पात्रों को ही तोड़-फोड़ के चूर्ण बना दिया। किसी ने यज्ञ कुण्ड में अग्नि के स्थान में जल भर दिया। लम्बे तडंगे शिवजी के प्रधान पार्षद मणिमान् उधर से आ रहे थे, दुर्भाग्यवश भृगुजी उनके सामने पड़ गये। उन्हें देखते ही मणिमान् खिल-खिलाकर हँस पड़े। उन्हें सब बातें याद आ गईं। प्रजापतियों के यज्ञ में ये ही दक्ष के सामने बैठे दाढ़ी हिला-हिलाकर बड़ी चबर-चबर कर रहे थे, उसे बार-बार शिव निन्दा करने को उकसा रहे थे। इसीलिये दक्ष ने अपने बड़े भारी यज्ञ का इन्हें आचार्य बनाया है। अतः मणिमान् ने पकड़ लिया। भृगुजी कहने लगे—"अरे यह क्या करता है। ऐसी असभ्यता का व्यवहार ठीक नहीं, तुम्हें पता नहीं। हम ही इस यज्ञ के प्रधान आचार्य हैं।"

मणिमान् ने झूठी गम्भीरता दिखाते हुए कहा—"आचार्य देव, डन्डौत! आपको ही तो मैं खोज रहा था। आचार्य की दक्षिणा भी तो देनी है मुझे। लेकर जाइये।" यह कहकर मणिमान् उनका सिर काटने को उद्यत हुए, यह देखकर नन्दीश्वर ने रोकते हुए दूर से ही कहा—"हैं-हैं, ऐसा मत करो। ब्राह्मण की हत्या करना उचित नहीं।" यह कहकर वे मणिमान् के हाथों से भृगु को छुड़ाने दौड़े। बीच में भग देवता चपट्टे में आ गये। नन्दीश्वर ने उन्हें पकड़ लिया और उनके मुँह पर मुँह रखकर बोले—"जय रामजी की कहो, प्रजापतियों के यज्ञ का याद है, तुम भी तो आँखें मटका रहे थे।" इतना कहकर उन्हें घसीटते हुए मणिमान् के पास जा पहुँचे, जहाँ भृगु मुनि

बँधे हुए काँप रहे थे। उधर से चण्डीश पूषा को पकड़कर ला रहे थे, नन्दीश्वर मणिमान् को रोक रहे थे कि भृगु की हत्या मत करो। मणिमान् इस बात पर उतारू थे कि हत्या की जड़ यह भृगु ही है, मैं इसे मारे बिना छोड़ूगा नहीं। उधर वीरभद्र को एक चिन्ता थी, वे दक्ष प्रजापति को ढूढ़ रहे थे कि शिवजी ने मुझे उसे ही मार डालने की आज्ञा दी है, ऋषियों में वे ऐसे छिप गये थे कि वीरभद्र को दिखाई ही नहीं देते थे, जब वे इधर-उधर खोज रहे थे तभी पत्नीशाला की ओर भागते हुए दक्ष दिखाई दिये। वीरभद्र ने जाकर उसका गला पकड़ लिया और बोले—"बच्चूजी भागकर कहाँ जाओगे, अब यज्ञ का फल तो लेते जाओ। शिवजी की निन्दा का प्रसाद तो ग्रहण करो।" इस प्रकार कहकर उसके गले में रस्सी डालकर पशु की तरह उसे खींचने लगे।

अब उन्होंने दूर से ही देखा—"मणिमान् और नन्दीश्वर परस्पर में वाद-विवाद कर रहे हैं। एक झपट्टे में वीरभद्र वहाँ पहुँचे, उनके पीछे दक्ष उसी प्रकार किंदिरते आ रहे थे, जिस प्रकार कसाई के पीछे बलिदान का बकरा घिसटता आता है। वहाँ आकर उन्होंने मणिमान् से पूछा—क्या बात है ?"

मणिमान् बोले—"देखिये, हत्या की जड़ यह भृगु ही है, यही अपनी इस बकरे की-सी दाढ़ी को मटका-मटकाकर प्रजापतियों के यज्ञ में दक्ष को उकसा रहा था, मैं इसकी हत्या करना चाहता हूँ, नन्दीश्वर मुझे रोक रहे हैं।" वीरभद्र बोले—"तब तुम झगड़ा क्यों करते हो। मैं तुम्हारा फैसला करता हूँ। नन्दीश्वर का कहना यही है न कि ब्राह्मण की हत्या नहीं करनी चाहिये, तुम कहते हो, इसने अपराध किया है, इसलिये वध्य है। मैं दोनों की बात मानता हूँ। ब्राह्मण अवध्य है, इसलिये इसे मारना ठीक नहीं। इसलिये एक इधर से इसके मूछों को

तानों, दूसरा उधर से, मैं इसकी दाढ़ी को पकड़ता हूँ बस, दाढ़ी मूँछ को सफाचट कर दो।"

इतना सुनते ही सभी बड़े प्रसन्न हुए, उनके लिये एक नया खेल बन गया। एक ने इधर से खींचा, दूसरे ने उधर से झटका मारा भृगुजी की दाढ़ी-मूँछ गोविन्दाय नमोनमः हो गई। उन्होंने उन भूरे-भूरे बालों को उखाड़कर अग्नि में उसी तरह फेंक दिया, जिस प्रकार मक्का की भुट्टियों के बालों को नोंचकर बच्चे फेंक देते हैं। भृगुजी को बालहीन करके अब भगदेव की बारी आई। अब तो नन्दीश्वर को उपाय मालूम पड़ गया। वे वीरभद्र से बोले—यह उस समय आँखें मटका-मटकाकर दक्ष को उत्साहित कर रहा था।" इतना सुनते ही वीरभद्र उसकी छाती पर चढ़ गये और दोनों आँखों को जड़ से उसी प्रकार निकाल लिया, जिस प्रकार पृथ्वी पर पड़े जुगनुओं को बच्चे बिल में से निकाल लेते हैं। बेचारे भग देवता का तो मानों संसार ही नष्ट हो गया। वे हाथों से टटोलते हुए, आँखों के गड्ढों से रक्त बहाते हुए, इधर-उधर भटकने लगे। शिव पार्षदगण हा-हा हू-हू करके हँसने लगे। चण्डीश पूषा को पकड़े हुए थे, वे भी वीरभद्र के सम्मुख उपस्थित किये गये। नन्दीश्वर ने कहा—"यह भी प्रधान अपराधियों में से है।"

वीरभद्र ने पूछा—"इसने क्या अविनय की थी?"

नन्दीश्वर बोले—"जब दक्ष शिवजी की निन्दा कर रहा था, तो यह अपने कुन्द के समान श्वेत दाँतों को निकालकर, ठहाका मार-मारकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए हँस रहा था।"

इतना सुनते ही वीरभद्र की आँखें लाल हो गईं। उन्होंने पूषा के गाल पर एक इतने जोर का तमाचा मारा कि उसकी बत्तीसी झड़कर उसी प्रकार पृथ्वी पर बिखर गई, जिस प्रकार दिवाली के दिन खील बिखर जाती हैं। उनका मुँह पोपला हो

गया। वे मुँह को इस प्रकार चलाने लगे मानो खीर सपोट रहे हों।

अब अन्त में दक्ष की पारी आई। वीरभद्र गर्जकर बोले—"देखो, भैया सब सावधान होकर सुन लो। यद्यपि ब्राह्मण अवध्य होता है। कैसा भी ब्राह्मण हो, हम उसका आदर ही करते हैं। फिर भी मैं इस दक्ष को जीवित न छोड़ूँगा। एक तो इसलिये कि इसी के अपमान से माताजी ने अपने शरीर का त्याग किया है, दूसरे इसलिये कि भरी सभा में इसने सदाशिव का अपमान किया है। तीसरे इसलिए कि इसने शिव भाग हीन यज्ञ किया है। यज्ञ कराने वालों को इसी ने लोभ देकर बुलाया है और सबसे बड़ी बात यह है कि इसे मार देने की शिवजी ने मुझे स्पष्ट आज्ञा दी है इसलिये मैं बिना मारे न छोड़ूँगा। इसे छोड़ने का मुझसे कोई आग्रह मत करना।" सब एक साथ चिल्ला उठे, "इसे अवश्य मार दो, इसे मारकर इसी अग्नि में हवन कर दो। यही शिव-द्रोही हत्या की जड़ है। हमारी माताजी का शरीरान्त इसी के कारण हुआ है, इसलिये इस पर दया न कीजिये।"

सब पार्षदों की अनुमति पाकर वीरभद्र दाँतों को किटकिटाते हुए, क्रोधपूर्वक दक्ष की छाती पर चढ़ गये और एक तीक्ष्ण तलवार लेकर उसका सिर काटने लगे, किन्तु पराक्रमी वीरभद्र अत्यन्त तीक्ष्ण तलवार से भी उसका कुछ बिगाड़ न सके। बहुत प्रयत्न करने पर भी खड्ग उसके शरीर में धँसता ही नहीं था। उसका चर्म वज्र से भी कठिन हो रहा था। उसमें एक खुरसट भी न लगी। तब तो वीरभद्र बड़े चक्कर में पड़े। यह तो अवध्य प्रतीत होता है। यह तो मरता ही नहीं।

वीरभद्र को बड़ी निराशा हुई। यदि यह जीवित बच गया, तब तो कुछ भी नहीं हुआ, किन्तु यह मरता क्यों नहीं। सोचते-सोचते उनके ध्यान में आया—"अरे, इसे तो ब्राह्मणों ने अपने

मन्त्रों के प्रभाव से अवध्य बना दिया है। इस यज्ञ में बलि के पशु के अतिरिक्त मन्त्रों के प्रभाव से किसी की मृत्यु हो ही नहीं सकती। इसलिये इसे बलिदान के पशु की भाँति मारूँ; तब तो मर सकता है, अन्यथा यह किसी भी अस्त्र शस्त्र से मरने का नहीं।" यह सोचकर पास में ही रखे हुए, पशु बलिदान के यन्त्र को उठाकर उन्होंने उसी से यज्ञ के यजमान को ही बलि पशु बनाकर—उसका गला घोटकर—उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया। धड़ को अलग करके उन्होंने सोचा—"इन ब्राह्मणों के मन्त्रों में बहुत अधिक अपरिमेय सामर्थ्य है, ऐसा न हो कि कहीं ये धड़ को सिर से लगाकर इसे फिर जीवित कर दें। इसलिये ऐसा करो कि 'न रहे बाँस न बाजे बाँसुरी' मूल का ही नाश कर दो जड़ ही काट दो, सिर को ही चम्पत कर दो।" यह सोचकर जलती हुई अग्नि में उन्होंने दक्ष के सिर को स्वाहा करके हवन कर दिया। ज्यों ही दक्ष का सिर अग्नि में पड़ा कि भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, साकिनी "साधु-साधु धन्य-धन्य, अच्छा किया अच्छा किया" कहकर कोलाहल करने लगे। कुछ नाचने लगे, कुछ गाने लगे। कुछ उछलने लगे। कुछ कूदने लगे। कुछ एक दूसरे को ढकेलने लगे। कुछ कुस्ती ही करने लगे। कुछ एक दूसरे पर पानी उलीचने लगे। जोगिनियाँ खप्परों में रक्त भरकर पान करने लगीं।

अग्नि की पत्नी स्वाहा बड़ी बन-ठनकर आई थीं कि इतने बड़े यज्ञ में बार-बार मेरा नाम लिया जायगा। पितरों की बहूरानी स्वधा भी सोलहू शृङ्गार कर बड़ी चटक-मटक से बैठी थी। शिव-गण तथा असभ्य पार्षदों की ऐसी अन्धाधुन्ध मार को देखकर वे भी खिसक गईं कि यहाँ तो बड़ी गड़बड़ी है।

यज्ञ का मूल ही नष्ट हो गया, देवता दशों दिशाओं में भाग गये, पितर पैर दबाकर चुपके से अपने-अपने घरों को चले गये।

ब्राह्मण पोथी पत्रा और डण्ड, कमंडलुओं का मोह छोड़कर भागे कि कहीं इनका लोभ किया, तो पकड़े जायँगे सो तो अलग, बिना भाव के कुटाई होगी। ये भूत, प्रेत सौ मारेंगे एक गिनेंगे। बड़ी सावधानी से मरम्मत करेंगे। इसलिये उन्हें जिधर भी रास्ता मिला, उधर ही भाग खड़े हुए। स्त्रियाँ अन्तःपुर में जाकर छिप गईं चारों ओर भगदड़ मच गई।

दक्ष के सिर को हवन करके वीरभद्र बोला–"भैया, यज्ञ पूरा हो गया, अब पूर्णाहुति और कर लो, तब अवभृत स्नान के लिये कैलाश चलेंगे। शिवजी के चरण की धूलि रूपी गङ्गाजी में ही सब अवगाहन करेंगे। धूर्जटि की उस परम पावन धूलि को ही शरीर पर मलकर इस यज्ञ के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करेंगे।" ऐसा कहकर उन्होंने यज्ञ के मण्डप, पात्र तथा हवनीय पदार्थ आदि सभी को एकत्रित करके उनमें आग लगा दी। ऊँची-ऊँची लपटों से स्वर्ग को छूती हुई अग्नि धू-धू करके जलने लगी। इस प्रकार दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करके तथा अपने सभी साथियों को संग लिये हुए, वीरभद्र कैलाश में शिवजी के चरणों में लौट आये।

मैत्रेय मुनि कहते हैं–"विदुरजी! जब वीरभद्र से दक्ष यज्ञ के विध्वंस का तथा दक्ष के सिर को अग्नि में हवन कर देने का समाचार शिवजी को ज्ञात हुआ, तो उन्हें कुछ सन्तोष हुआ किन्तु सती के शरीर त्याग के शोक को वे सर्वथा न भुला सके।"

छप्पय

सबतें पीछे शम्भुससुर की बारी आई।
वीरभद्र ने पटकि दज्ञ पै खड्ग चलाई॥
किन्तु न मारयो-मरै सबनिकूँ चिन्ता व्यापी।
कौन जतन तैं मरै सती-घाती जिह पापी॥
सहसा सूझी युक्ति इक, बलि पशु सम सिर मोरिकें।
फेक्यो जरती अगिनिमें, धड़तें सिरकूँ तोरिकें॥

जगत् शिव की क्रीड़ा स्थली है

(२०३)

विद्यातपोव्रतधरान् मुखतः स्म विप्रान्
ब्रह्मात्मतत्त्वमवितुं प्रथमं त्वमस्राक्।
तद्ब्राह्मणान् परम सर्वविपत्सु पासि
पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदण्डः ॥*

(श्री० भा० ४ स्क० ७ अ०, १४ श्लो०)

छप्पय

शौनक पूछें—सूत ! कलह को बीज बताओ।
मान्यो कस शिव बैर दक्ष ने सो समुझाओ॥
सूत कहें—मुनि ! कलह कामना तें ई होवै।
काम, क्रोध तैं उपजि सुमति सद्गुन सब खोवै॥
विधि तैं उपज्यो काम जब, कामातुर ऋषि मुनि भये।
बरजे जब श्री शम्भु ने, तब सब लज्जित ह्वै गये॥

---

* विशुद्ध हुए दक्ष शिवजी की स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे विभो ! आपने विद्या, तप और व्रतों को धारण करने वाले ब्राह्मणों को अपने मुख से वेद और आत्मतत्वकी रक्षा के लिये रचा है। आप उन्हें निर्दयता पूर्वक दण्ड नहीं देते; किन्तु जैसे ग्वाला हाथ में दण्ड लिए हुए पशुओं की रक्षा करता है; उन्हें कुपथ में जाने से बचाता है, वैसे ही आप दण्ड देकर सब विपत्तियों से सबकी रक्षा करते हैं।"

निर्विकार निर्लेप ब्रह्म में सृष्टि की सम्भावना भी नहीं की जा सकती। जब निर्गुण से सगुण सदृश होते हैं, तब जीवों के भोगार्थ, क्रीड़ार्थ या भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये अपनी भक्तवत्सलता प्रकट करने के लिये वे निष्फल, निरञ्जन, निर्विकार हरि इस विश्व की रचना करते हैं। इस विश्व में यदि सभी सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन तथा नारद आदि के सदृश हो जायँ, तो यह सृष्टि चक्र कैसे बढ़े ? बिना कामना के सृष्टि नहीं, कामना होती है अपूर्णता में, अपूर्णता होती है विकार से। अतः सृष्टि चक्र को चलाने के लिये ब्रह्माजी मन को मथने वाले विकार को उत्पन्न करते हैं। यद्यपि ब्रह्म में कोई विकार नहीं निर्विकार है; किन्तु जब वे सृष्टि, स्थिति और प्रलय के लिये अपने तीन रूप बना लेते हैं, तो वे स्वयं ही विकारी से भ्रम वश प्रतीत होते हैं। वैसे तो उनमें कभी भी किसी भी दशा में विकार की संभावना नहीं, क्योंकि वे दिव्य गुण सम्पन्न अच्युत हैं; फिर भी जैसे रेशम का कीड़ा अपने आप ही अपने मुँह से सूत निकालता है और फिर स्वयं ही उसके चक्कर में फँस जाता है, वैसे ही ब्रह्माजी इस सृष्टि को रचते-रचते उसके सुख-दुखों में विकृत से प्रतीत होने लगते हैं। नहीं तो शिवजी को भला कहाँ कोप ? कैसा राग द्वेष ? वे तो सदा निर्विकार निरञ्जन हैं।

इस दक्ष-यज्ञ विध्वंस के प्रकरण को सुनकर शौनकजी ने सूतजी से पूछा—"सूतजी ! यह शिवजी ने कैसी प्राकृत पुरुषों की-सी लीला कर डाली, शक्ति स्वरूपा श्री सतीजी ने ऐसी हठ क्यों की ? दक्ष ने अपने जामाता के प्रति ऐसा दुर्व्यवहार क्यों किया ? फिर सतीजी ने वहाँ आत्महत्या क्यों कर ली ? शिवजी ने—जो शान्ति की मूर्ति ही हैं—इतना कोप क्यों किया ? वैदिक वैष्णव यज्ञ का इस अशुद्धता पूर्वक विनाश क्यों किया ? इस

इतने बड़े राग द्वेष से तो प्रतीत होता है, यह कोई प्राचीन झगड़ा था, जो अब समय पाकर उभड़ आया।"

यह सुनकर सूतजी हँस पड़े और बोले—"महाभाग ! शिवजी के लिये कुछ भी नवीन नहीं। सब प्राचीन ही है। यह उनका विनोद है, जैसे बच्चे दर्पण में अपना मुँह देखकर उसे बिराते हैं, तो प्रतिबिम्ब भी बिराता-सा दिखाई देता है। दर्पण में अपने आपको देखकर थप्पड़ घूँसा उठाते हैं, तो प्रतिबिम्ब भी वैसा ही करता है। बड़ी देर तक बच्चे दर्पण से क्रीड़ा करते रहते हैं। जब इच्छा हुई दर्पण को धड़ाम से धरती पर दे मारा, फूट गया, फिर अपने आप में क्रीड़ा करते हैं। इसी प्रकार यह विश्व ब्रह्मांड उनका दर्पण है। इसे लेकर खेल करते हैं। इन जीवों में क्या सामर्थ्य कि शिवजी का सामना कर सकें, उनसे विरोध कर सकें किन्तु स्वयं ही ये ऐसे रूप बना लेते हैं। लोहे की ही अनेक वस्तुएँ बनती हैं। लोहे की ही कैंची, छैनी उन्हें काट देती है, लोहे का ही घन उन्हें कूटता है, लोहे का ही साँचा उन्हें ढालकर विविध वस्तुएँ बना देता है, अन्त में सब लोहा-का-लोहा। इसी प्रकार ये ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, मनु, प्रजापति सब शिव के ही रूप हैं। खेल के लिये सब विचित्र चरित्र करते हैं, जिससे संसारी लोगों की उनके चरित्रों में रुचि हो। इधर-उधर के विषयी लोगों की बातें न सुनकर शिव चर्चा ही श्रवण करें। शिव के चरित्र देखने में कितने भी अश्लील, कितने भी वीभत्स क्यों न दिखाई दें, सब शिव ही हैं।

आपने इस विरोध का कारण पूछा। कोई भी कार्य कारण के बिना तो होता नहीं। बात यह थी कि शिवजी ने इस विश्व को बनाकर जब अपने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये तीन रूप रख लिये तो ब्रह्माजी देव-दानव, यक्ष-राक्षस, पशु-पक्षी, लता-वृक्ष, आदि चार प्रकार के जीवों की नवधा सृष्टि रचने लगे।

सनकादिकों के अनन्तर उन्होंने मरीचादि दस मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। प्रजा की वृद्धि करने से ये प्रजापति के नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रजा की वृद्धि होते न देखकर ब्रह्माजी को कुछ रोष आ गया, अतः उसकी दोनों भ्रुवों के बीच से क्रोध, रुद्र रूप धारण करके प्रकट हुआ। फिर भी किसी के मन में प्रजा बढ़ाने की इच्छा नहीं हुई। तब ब्रह्माजी प्रसन्न मन से सोचने लगे—कैसे इन सबका चित्त प्रजा की वृद्धि में लगे? वे ऐसा सोच रहे थे कि उनके शरीर से एक बहुत ही सुन्दरी विश्व को मोहने वाली मोहनी सन्ध्या देवी उत्पन्न हुई। उसके साथ ही एक बहुत सुन्दर पुरुष उत्पन्न हुआ। उसके सौन्दर्य को देखकर सभी का मन व्यथित होने लगा, सबके मन में कामना उत्पन्न हो गई। वह कुसुमों का आयुध लिये हुए था। उत्पन्न होते ही उसने हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहा—"महाराज! मुझे क्यों उत्पन्न किया, मेरा नाम बताइये, मेरा बल बताइये, मेरा काम बताइये, मुझे बहू दीजिये।"

उनकी ऐसी बातें सुनकर ब्रह्माजी ने पास में ही बैठे हुए अपने पुत्र प्रजापतियों से इसका नामकरण संस्कार करने को कहा। ऋषियों ने ब्रह्माजी की आज्ञा शिरोधार्य करके उसका नामकरण किया। ऋषि बोले—"उत्पन्न होते ही इन्होंने सबके मन को मथित किया है, इसलिये इनका नाम 'मन्मथ' होगा, इन्हें देखते ही सबके मन में कामना उत्पन्न हो गई, इसलिये इनका नाम 'काम' भी होगा। कुसुमों का आयुध रखने से ये 'कुसुमायुध' भी कहलायेंगे।"

यह सुनकर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले—"तुम संसार में सबसे श्रेष्ठ सुन्दर होगे। तुम्हारे समान सुन्दर तीनों लोकों में कोई न होगा। तुम्हारा प्रभाव सब जीवों पर पड़ेगा, जीवों की बात तो पृथक् रही, हम तीनों देव भी तुम्हारे प्रभाव

से बचने न पावेंगे। हम भी तुम्हारे अधीन हो जायँगे। तुम समस्त स्त्री पुरुषों के हृदय में समान भाव से व्यापोगे। स्त्री पुरुष को देखकर, पुरुष स्त्री को देखकर तुम्हारे अधीन हो जायँगे। तुम्हारे फूलों के बाणों के सम्मुख ठहरने की शक्ति किसी में भी न होगी।"

इतना सुनते ही काम की इच्छा हुई लाओ, यहीं अपने पुरुषार्थ की परीक्षा कर लें। उसने ब्रह्माजी तथा सभी प्रजापतियों के ऊपर बाण छोड़े। कहावत है—"भूकना सिखाया–काटने दौड़े।" भस्मासुर की भाँति काम ने भी अपने वरदाता ब्रह्माजी के ही ऊपर परीक्षा करनी आरम्भ कर दी। ब्रह्माजी के पास में सन्ध्या देवी खड़ी थीं। ब्रह्माजी का वरदान कभी असत्य तो हो नहीं सकता, उनके मन में कुछ विकार उत्पन्न हुआ। प्रजापतियों के मन में भी होना ही था। सन्ध्या का भी चित्त निर्दोष न रह सका। अपना ऐसा प्रभाव देखकर काम को बड़ी प्रसन्नता हुई। शिवजी तो निर्विकार ही ठहरे, ब्रह्माजी तथा प्रजापतियों की ऐसी दशा देखकर उन्होंने इन सबको डाँटा और ब्रह्माजी से कहा—"महाराज, आपके मन में ऐसा भाव होना बड़ी लज्जा की बात है।" यह सुनकर सभी अत्यन्त ही लज्जित हुए। भीतर-ही-भीतर शिवजी से कुढ़ने लगे।

जब काम का प्रभाव शान्त हुआ; तो सभी के मन पूर्ववत निर्मल हुए। ब्रह्माजी को काम पर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसे शाप दिया—"जा तू शिवजी के द्वारा भस्म हो जायगा।"

काम ने दुखित चित्त से कहा—"महाराज, मेरा क्या अपराध है? आपने ही तो अपने वरदान द्वारा मुझे बल, ऐश्वर्य, प्रभाव और सामर्थ्य प्रदान किया। आपके ही दिये हुए बल से तो मैंने ऐसा किया और आप ही अन्त में शाप दे रहे हैं। यह तो महाराज! हमारे साथ आप अन्याय कर रहे हैं।"

यह सुनकर ब्रह्माजी ने कहा—"अच्छी बात है। मेरा वरदान अथवा शाप तो कभी मिथ्या होता नहीं, इसलिये तेरा अङ्ग तो नष्ट होगा, किन्तु अनङ्ग होकर भी तेरा प्रभाव सब पर ऐसा ही होगा। फिर भगवान् के यहाँ तू उत्पन्न होगा।"

तब काम ने कहा—"महाराज, मुझे बहू तो दीजिये। अकेला मैं क्या करूँगा ?"

तब दक्ष प्रजापति ने अपने पसीने से एक मानसिक कन्या उत्पन्न की। वह अत्यन्त ही सुन्दरी थी। मुनियों ने उसका नाम रति रखा। सबने मिलकर बड़ी धूम-धाम से रति का कामदेव के साथ विवाह कर दिया। यह युगल जोड़ी संसार में अनुपम सौन्दर्य युक्त हुई। जैसी अत्यन्त लावण्य सौन्दर्यमयी बहू थी, वैसा ही त्रैलोक्य-मोहन अनुपम-सौन्दर्य-युक्त दूल्हा था। ये दोनों मिलकर सबके मन को मथने लगे। संसार में कोई विरला ही होगा, जो इनके प्रभाव से बचा हो।

इधर सन्ध्या को बड़ी लज्जा हुई, उसके मन में काम उत्पन्न होते ही, पिता भाइयों के सम्मुख ही विकार उत्पन्न हो गया। अतः उसने एकान्त में जाकर घोर तपस्या की। उसके तप से सन्तुष्ट होकर शिवजी उसके सम्मुख प्रकट हुए और वर माँगने को कहा। उसने शिवजी से ये वरदान माँगे—"उत्पन्न होते ही मेरे मन में मलीनता आ गई है, अतः अब से उत्पन्न होने वाले बालकों के मन में कभी मलीनता न आवे। भाई और पिता के सम्मुख मेरे भाव दूषित हुए, अतः अब से कभी किसी के भाई या पिता के सम्मुख ऐसे भाव हों, तो उन्हें अत्यन्त घोर रौरव नरक की प्राप्ति हो। मुझे कोई योग्य ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पति मिले। मेरा मन कभी किसी भी पुरुष को देखकर विकार को प्राप्त न हो, मैं सब पतिव्रताओं में श्रेष्ठ होऊँ।"

शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा—"अच्छी बात है, मैंने तुम्हें

ये सब वरदान दिये। (१) प्राणियों की चार अवस्थाएँ होती हैं। १—बाल, २—किशोर, ३—युवा और ४—वृद्धावस्था। काम का विकार बाल और किशोरावस्था के अनन्तर ही हुआ करेगा। (२) भाई या पिता के सम्मुख मन से भी जो कुत्सित विचार करेगी, उसे घोरातिघोर रौरव नरक की प्राप्ति हुआ करेगी। (३) इस शरीर को तो तुम्हें छोड़ना पड़ेगा, दूसरे शरीर से तुम ब्रह्मवेत्ता भगवान् वशिष्ठ की पत्नी होगी। (४) तुम्हारा मन सदा धर्म में ही रहेगा। संसार में तुम सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता होगी।" इस प्रकार वरदान देकर शिवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। उसी समय मेधातिथि मुनि का यज्ञ हो रहा था। उसी यज्ञ में अलक्षित भाव से सन्ध्या ने अपना शरीर त्याग कर दिया। शरीर त्याग करके वह सूर्यलोक को प्राप्त हुई। उसके एक अंश से तो ये सायं-काल की दोनों सन्ध्यायें उत्पन्न हुईं और एक अंश से मेधातिथि मुनि की पुत्री हुई, जिसका नाम अरुन्धती हुआ। जिसका विवाह वेदवेत्ता भगवान् वसिष्ठ के साथ हुआ जिससे शक्ति आदि पुत्रों की उत्पत्ति हुई।"

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! पीछे तो आप अरुन्धती को कर्दम मुनि की पुत्री बता आये हैं, अब कहते हैं सन्ध्या ही मेधातिथि की पुत्री हुई। यह क्या बात है?"

सूतजी ने कहा—"महाराज, ये तो कल्प भेद से कथाओं में भेद हो ही जाता है। एक कल्प में कर्दम सुता भी अरुन्धती देवी थीं। ये बड़ी पतिव्रता थीं, आज भी सप्तर्षियों के तारों के बीच में अरुन्धतीजी सब को चमकती हुई दिखायी देती हैं।"

इधर शिवजी के अपमान से लज्जित होकर ब्रह्माजी ने कामदेव को, वसन्त, मारुत आदि के साथ शिवजी के मन में काम-विकार उत्पन्न करने को भेजा। कामदेव भी अपनी सेना को सजाकर बड़ी सज-धज के साथ शिवजी के समीप गये। उन्होंने

हर प्रकार से विविध चेष्टाओं द्वारा शिवजी पर अपना प्रभाव जमाना चाहा, किन्तु वे तो भोलेनाथ ही ठहरे। उनके मन में लेशमात्र भी विकार उत्पन्न नहीं हुआ। हताश होकर काम अपनी सेना के सहित ब्रह्माजी के समीप लौट आया। उसने आकर निवेदन किया—"प्रभो! वहाँ तो मैं विफल रहा, शिवजी पर मेरा कुछ भी प्रभाव न पड़ा। अब कोई ऐसा उपाय निकालिये कि शिवजी भी मेरे वशीभूत हो जायँ।"

सूतजी कहते हैं—"शौनकजी! यह प्राणी भगवान् की माया में ऐसा मोहित हो जाता है कि अपने विनाश की बात भी भूल जाता है। इसी प्रकार कामदेव शिव-माया में विमोहित होकर ब्रह्माजी के शाप को भूल गये और शिवजी को अपने वश में करने के उपाय सोचने लगे। इधर प्रजापतियों के मन में भी डाह उत्पन्न हुआ कि हमारा मन तो विकार को प्राप्त हुआ किन्तु शिव निर्विकार ही बने रहे। ऐसा कोई उपाय करना चाहिये, जिससे शिवजी विवाह करके गृहस्थी हो जायँ। इसी के लिये सब भाँति-भाँति के उपाय सोचने लगे।"

छप्पय

विधि ने आज्ञा दई काम शिव चित्त बिगारो।
निर्विकार श्री शम्भु काम का करे बिचारो॥
मलयानिल सुबसन्त सबनि मिलि शक्ति लगाई।
किन्तु मलिनता नहीं महेश्वर मनमहँ आई॥
अपनो-सो मुँह मदन लै, ब्रह्मादिक ढिँग फिरि गयो।
निस्पृहता सुनि शम्भु की, सबको मन विस्मित भयो॥

शिवा का शिवजी के साथ विवाह

[२०४]

त्रयोदशाददुर्माय तथैकामग्नये विभुः ।
पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, १ अ०, ४८ श्लो०)

छप्पय

दक्ष करयो तप महाशक्ति आराधी विधिवत् ।
प्रकटी जग की मातु कह्यो वर माँगो इच्छित ॥
दक्ष कह्यो—मम गेह प्रकट ह्वै चरित दिखाओ ।
शम्भु सङ्ग करि ब्याह प्रेम को मरम जताओ ॥
"एवमस्तु" माता कह्यो, दै वर अन्तरहित भई ।
ते ई रुद्राणी सती, दक्ष कुमारी बनि गई ॥

सब क्षेत्रों में स्पर्धा से ही वृद्धि और सृष्टि है। धनवान्, धनवान् से, विद्वान्, विद्वान् से, विद्यार्थी दूसरे विद्यार्थी से, स्पर्धा करके ही बढ़ते हैं। स्पर्धा से कलह की भी वृद्धि होती है, उन्नति भी होती है और दुःख की वृद्धि भी होती है। जहाँ स्पर्धा नहीं वहाँ अशान्ति नहीं, सृष्टि नहीं, व्यापार नहीं, कलह नहीं, क्षय नहीं, नाश नहीं, उन्नति नहीं, अवनति नहीं। वहाँ तो परिपूर्ण

---

* दक्ष प्रजापति ने अपनी कन्याओं में से तेरह धर्म को दीं एक अग्नि को, एक पितरों को और सबसे छोटी सती देवी का विवाह, संसार का संहार करने वाले सर्व शक्तिमान् भगवान् सदाशिव के साथ किया।

निर्विकार, निरंजन, निर्लेप ब्रह्म-ही-ब्रह्म है। पृथ्वी में ही नहीं ब्रह्मलोक तक यह भूतिनी स्पर्धा फैली हुई है। स्पर्धा से ही सृष्टि चक्र चल रहा है। स्पर्धा होती है बहुतों में। जो अकेला है, वह किससे स्पर्धा करेगा। अद्वैत में स्पर्धा की सम्भावना ही नहीं। जब वह एक, अद्वितीय, निराकार इच्छा करता है कि मैं एक से बहुत हो जाऊँ, तो वही सच्चिदानन्द शिव अपने तीन रूप बना लेता है। दोनों एक ही हैं, फिर भी वे परस्पर में माया को बीच में डालकर कलह करते हैं। एक होकर कलह क्यों करते हैं जी? अब क्यों करते हैं, ऐसा करने में उन्हें आनन्द आता है, जगत् को आनन्दित करते हैं। नाटक में सभी परस्पर में प्रेम रखते हैं, बहुत से सगे भाई बहिन भी होते हैं, किन्तु जब वे वेष बनाकर रंगमंच पर आते हैं, तो परस्पर में लड़ते-झगड़ते हैं, जहाँ पर्दा पड़ा—यवनिका पात हुआ—फिर सब घुल-मिल गये, एकाकार हो गये, यही निराकार से साकार होने का सार है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब श्रीशिव ने अपने तीन रूप बना लिये तब कुछ खटपट तो होनी ही चाहिये। ब्रह्माजी पर उन्हीं के पुत्र काम ने अपने बल की परीक्षा की—ब्रह्माजी के वर का प्रभाव समझना चाहा, वह सफल हुआ। ब्रह्माजी के मन में कुछ विकृति हुई। इस पर शिवजी ने उन्हें डाँटा डपटा। इससे ब्रह्माजी को बड़ी लज्जा हुई कि यह रुद्र मेरा ही बेटा, मेरी ही भ्रकुटि से उत्पन्न हुआ और मुझे ही डाँट रहा है। किसी भाँति इसके हृदय में भी काम का प्रभाव हो, तब काम चले। स्पर्धा होते ही प्रबल प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। वसंत, मलयानिल, रति आदि के सहित कामदेव को शिवजी के समीप भेजा, किन्तु सब मिलकर भी शिव के मन को विचलित न कर सके। तब ब्रह्माजी ने काम के सहचर मार नामक गण को उत्पन्न किये। उन्हें लिये हुए काम शिवजी के पीछे-पीछे घूमने लगा। शिव जहाँ भी जाते,

उन्हें विचलित करने काम वहीं अपनी सेना सहित जाता। शिवजी के मन पर उसका अणुमात्र भी प्रभाव न पड़ा। तब तो पराजित होकर काम ने अपनी विफलता विधि के सम्मुख निवेदन की। निराश होकर वह अपने लोक को चला गया।

ब्रह्माजी हताश नहीं हुए, प्रयत्न में शिथिलता न हुई। जब अपना समस्त पुरुषार्थ करके वे थक गये, तो उन्होंने हरि की शरण ली। घोर तपस्या आरम्भ की। उनकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर जनार्दन श्रीविष्णु प्रकट हुए और तपस्या करने का कारण पूछा। ब्रह्माजी जब सब अपना कह ले गये तब भगवान् बोले—"ब्रह्मन्! आप वेदवेत्ता होकर भी ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं। शिवजी तो निर्विकार, निराकार हैं, उनके मन में भला काम वासना कैसे उत्पन्न हो सकती है। फिर भी मैं आपको एक उपाय बताता हूँ। अकेला पुरुष शक्ति के बिना सृष्टि नहीं कर सकता। वह विश्वव्यापिनी निराकार महाशक्ति लक्ष्मी, ब्रह्माणी और रुद्राणी तीन रूप धारण कर लेती हैं। वे ही अचिन्त्य महिमा वाली आद्याशक्ति अपने अलौकिक दिव्य प्रेम से शिवजी को वश में करने में समर्थ हो सकती हैं। तुम महामाया शङ्करी की आराधना करो, वे तुम्हें अभीष्ट वरदान देंगी।" इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। भगवान् का आदेश पाकर ब्रह्माजी जगदम्बिका सर्वव्यापिनी महामाया भवानी की आराधना में प्रवृत्त हुए। कालान्तर में भवानी प्रसन्न हुईं और उन्होंने प्रकट होकर ब्रह्माजी से वरदान माँगने को कहा। ब्रह्माजी ने कहा—"शिवजी किसी प्रकार विवाह करके पत्नी वाले बन जायँ, ऐसा, हे महामाया! आप उपाय करें। उनके बिना दारग्रहण किये सृष्टि का कार्य चल नहीं सकता।"

यह सुनकर भवानी जगदम्बिका बोलीं—"शिवजी निर्विकार हैं, उनके मन में कभी स्वप्न में भी कामवासना उत्पन्न नहीं हो

सकती। बिना कामना के विवाह होता नहीं, इसलिये यह असम्भव बात है। फिर भी मेरी आराधना कभी निष्फल नहीं होती, अतः मैं तुम्हारे पुत्र दक्ष के यहाँ पुत्री रूप में उत्पन्न होकर शिवजी के संग विवाह करूँगी।" ऐसा वरदान देकर महाशक्ति अन्तर्धान हो गयीं।

आद्याशक्ति से वरदान पाकर उन्होंने अपने प्रधान पुत्र दक्ष प्रजापति को आदेश दिया—"पुत्र! तुम महाशक्ति को तपस्या द्वारा सन्तुष्ट करो, जिससे वे तुम्हारे यहाँ पुत्री रूप में उत्पन्न हों। ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर दक्ष ने क्षीरसागर के समीप सहस्रों वर्षों तक निराहार रहकर एक पैर से खड़े होकर घोर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर जगदम्बिका प्रकट हुईं और वरदान माँगने को कहा। दक्ष ने हाथ जोड़कर कहा—"देवि! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मेरे यहाँ साकार होकर प्रकट हों और शिवजी के साथ विवाह करें।"

महामाया जगदम्बिका ने कहा—"दक्ष! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हारी पुत्री बनकर प्रकट होऊँगी और शिवजी के साथ विवाह करूँगी। जहाँ तुम्हारा मेरे प्रति प्रेम शिथिल हुआ, तभी मैं अपने इस शरीर को त्याग दूँगी।" इतना कहकर शक्ति अन्तर्धान हुई। दक्ष अपने घर चले आये। कालान्तर में वे ही महामाया जगदम्बिका दक्ष के यहाँ सतीरूप में-पुत्री बनकर-प्रकट हुईं और बढ़कर विवाह के योग्य हुईं। विवाह-योग्य होने पर वे शिवजी की प्राप्ति के लिये बन में जाकर घोर तपस्या करने लगीं। शास्त्र की विधि से उन्होंने नन्दा व्रत आरम्भ कर दिया। उनकी तपस्या को देखने अपनी-अपनी स्त्रियों सहित ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य सभी देवगण आये। उन्हें शिव प्राप्ति के लिये तपस्या करते देखकर सभी को परम हर्ष हुआ। अब तो ब्रह्माजी को कुछ-कुछ आशा हुई। वे भगवती सती के अलौकिक

रूप लावण्य को निहारकर और उनकी शिव प्राप्ति के लिये घोर तपस्या देखकर समझ गये अब तो कार्य बन ही जायगा। इसलिये वे भगवान् विष्णु को साथ लेकर कैलाश पर शिवजी के समीप गये। वहाँ दोनों देवों ने अपनी देवियों के सहित शिवजी की स्तुति की उनकी स्तुति से सन्तुष्ट होकर शिवजी ने उनके आगमन का कारण पूछा।

शिवजी को सन्तुष्ट देखकर ब्रह्माजी कहने लगे—"देखिये, महाराज! हम दोनों ने विवाह कर लिया है, यह ब्रह्माणी लक्ष्मी आपके सम्मुख खड़ी हैं, किन्तु जब तक आप विवाह नहीं करते, तब तक सृष्टि का कार्य आगे बढ़ नहीं सकता। अतः महाराज! इस रूखेपन को छोड़ो, कुछ सरसता हृदय में लाओ। कोरे बाबाजी से सृष्टि का काम कैसे चलेगा। आप भी हमारी भाँति एक से दो और दो से बहुत बन जाइये।"

शिवजी तो भोले बाबा ही हठरे। बोले—"देखो, भाई, हमें तो विवाह फिवाह की इच्छा तो होती नहीं। जान बूझकर कौन अपने पैरों में बेड़ी डाले। विवाह करने पर फिर वह पूँछ की तरह हमारे पीछे लगी डोलेगी। जैसे ये तुम्हारे पीछे लगी डोलती हैं। हमारी समाधि में विघ्न होगा किन्तु तुम नहीं मानते और तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो कहीं सट्ट-पट्ट लगाओ। अनुरूपा कोई लड़की मिल जायगी, तो अच्छी बात है पड़ी रहेगी वह भी यहाँ।"

यह सुनकर दोनों देवों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होंने बताया—"महाराज! दक्ष कुमारी सती संसार में सबसे सुन्दरी है, वह आपकी ही प्राप्ति के लिए तप कर रही है। आप एक बार जाकर उसे देख भर लें, उसकी तपस्या को दर्शन देकर सफल भर कर दें। फिर जैसी आपकी इच्छा हो।"

शिवजी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। इधर सतीजी का

दो महीने का नन्दा व्रत भी समाप्त हुआ। उसकी समाप्ति पर भगवान् विश्वनाथ उनके सम्मुख प्रकट हुए। उनके तपोयुक्त

मुखमण्डल को देकर शिवजी अपनेपन को भूल गये और उससे बोले--"देवि ! तुम मुझसे जो भी चाहो वरदान माँग लो।"

अपने सम्मुख साक्षात् सदाशिव को साकार रूप में देखकर

सती हड़बड़ाकर उठ बैठीं, उन्होंने लजाते हुए, शिवजी की वन्दना की, यथोचित सामग्रियों से उनकी पूजा की और सिर नीचा करके उनके सम्मुख खड़ी हो गईं। शिवजी उनसे बार-बार वर माँगने को कहते, किन्तु उनके मुख से मारे लज्जा के एक शब्द भी नहीं निकलता था, तब शिवजी स्वयं ही बोले—"अच्छी बात है, तुम मेरे साथ विवाह करोगी ?"

यह सुनकर सतीजी का मुख कमल खिल उठा। यही तो उन्हें अभीष्ट था। शिवजी ने स्वयं सन्तुष्ट होकर अपने आप यह प्रस्ताव किया। प्रस्ताव क्या वरदान दिया, तो उन्होंने प्रसन्न होकर परमेश्वर के पादपद्मों में प्रणाम किया और वरदान पाकर अपने माता-पिता के यहाँ चली गईं।

सूतजी कहने हैं—"मुनियो ! कामना ही मनुष्य को दीन बनाती है—जब तक कोई इच्छा नहीं होती, तब तक मनुष्य स्वतन्त्र और निस्पृह बना रहता है। जहाँ कामना हुई अथवा कोई सङ्कल्प मन में उत्पन्न हुआ तहाँ सब हेकड़ी भूल जाती है, उसे सबकी अनुनय विनय करनी पड़ती है। जो शिवजी, ब्रह्माजी को तनिक-सी विकृति होने पर बिगड़ गये थे वे ही आज ही मन में विवाह की इच्छा होने पर पानी-पानी हो गये। उन्हें इच्छा क्या होनी थी, लौकिक लीला दरशा रहे थे।"

अब तो शिवजी को सदा सती का ही सुन्दर स्वरूप ध्यान में दिखाई देने लगा। जो काम वसन्त, मलयानिल रति आदि के साथ कामदेव न कर सके, वह काम सती देवी के दर्शन मात्र से हो गया। अब शिवजी के सिर एक ही धुनि सवार थी, कैसे सती के साथ विवाह हो। उन्होंने ब्रह्माजी को स्मरण किया। स्मरण करते ही ब्रह्माजी दौड़े आये। आज शिवजी ने उनका बड़ा आदर किया। ददिया ससुर का नाता जो जोड़ना था। बड़े स्नेह से बोले—"ब्रह्माजी ! कोई ऐसी युक्ति लगाओ कि दक्ष

अपनी कन्या सती का विवाह मेरे साथ कर दे।" यह सुनकर ब्रह्माजी मन-ही-मन बड़े सन्तुष्ट हुए और बोले--"महाराज ! आप घबड़ाते क्यों हैं। वह तो मेरा पुत्र ही है, अवश्य वह सती का विवाह आपके साथ करेगा। मैं आपके विवाह का शक्ति भर प्रयत्न करूँगा।"

तब शिवजी ने कहा—"अच्छी बात है, आप जायँ और दक्ष का अभिप्राय जानकर शीघ्र ही मुझे सम्वाद दें।"

इतना सुनते ही बहुत 'अच्छा' कहकर ब्रह्माजी प्रजापति दक्ष के यहाँ चल दिये। दक्ष तो इसी चिन्ता में मग्न थे कि मेरी कन्या का विवाह शिवजी के साथ कैसे हो। ब्रह्माजी के प्रस्ताव पर दक्ष ने अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुए स्वीकृति दे दी। ब्रह्माजी शिवजी के पास गये। शिवजी के संकल्पमात्र से भगवान् विष्णु मरीच्यादि समस्त ऋषि मुनि तथा देवगण आ गये। सब बड़ी धूम-धाम से बरात लेकर दक्ष प्रजापति के यहाँ गये। वैदिक विधि से शिवजी का सती के साथ विवाह हो गया। सतीजी को लेकर शिवजी कैलाश पर आ गये और अपनी अर्धाङ्गिनी सती के साथ विविध भाँति की रसमयी क्रीड़ा करने लगे। कुछ काल के अनन्तर भगवान् श्री कौशल किशोर की परीक्षा के लिये मोहवश सतीजी ने सीताजी का रूप धारण किया। जिससे भगवान् शङ्कर ने उन्हें मन से त्याग दिया, उसी समय द्वेषवश दक्ष ने शिव भाग विहीन यज्ञ किया, जिसमें सतीजी ने अपने प्राणों को त्याग दिया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! हमने ऐसा सुना है कि वीरभद्रजी से यज्ञ विध्वंस कराके दक्ष का सिर कटने पर भी शिवजी को शान्ति नहीं हुई। वे सतीजी के वियोग में अत्यन्त विह्वल हुए। उनके शव कन्धे पर रखकर वे नृत्य करते रहे। उनकी ऐसी दशा देखकर श्रीविष्णु ने अपने चक्र से सती के समस्त अंगों को काट-

काटकर फेंक दिया। जहाँ-जहाँ भगवती सती के जो-जो अङ्ग गिरे वहीं-वहाँ शक्ति पीठ हो गई, जो अब तक मानी और पूजी जाती हैं। ऐसी पीठ इक्यावन मानी जाती हैं। देवी भागवत में एक सौ आठ मानी गई हैं। तन्त्रों में बताया है कि जहाँ-जहाँ सतीजी का जो-जो अङ्ग गिरा वहाँ-वहाँ शिवजी भिन्न-भिन्न नाम रखकर—भैरव रूप से—विराजते हैं। जैसे काश्मीर में सती देवी का कण्ठ देश गिरा, वहाँ महामाया पीठ हुई और त्रिसन्ध्येश्वर भैरव। बैजनाथ में हृदय गिरा, जहाँ दुर्गा शक्ति हुई वैद्यनाथ भैरव, प्रयागराज में हाथों की उँगलियाँ गिरीं, ललिता शक्ति हुईं और भवनामक भैरव वहाँ देवी के समीप वास करते हैं। इसी प्रकार सभी स्थानों में शिवजी रहते हैं। सतीजी से उनका ऐसा स्नेह था कि अंगों के खंड खंड होने पर भी वे उनका सान्निध्य न छोड़ सके, भैरव रूप से अद्यावधि विराजते हैं।

मुनियो! यह सब धूर्त काम के कौतुक हैं। अजी, विचारे काम की क्या शक्ति है, यह सब शिव की लीला है, जीवों के उद्धार के निमित्त ऐसी क्रीड़ायें करते हैं। जीवों का ऐसी सरस बातों में बहुत मन लगता है जैसे कफ के रोगों में सभी मीठी वस्तुएँ हानि करती हैं, किन्तु शहद हानि नहीं करता। इसी प्रकार काम कथायें नरक को ले जाने वाली हैं, किन्तु उनका सम्बन्ध यदि हरिहर से हो जाय, तो वे ही मुक्ति का हेतु बन जाती हैं। आपने पूछा था, दक्ष ने सहसा इतना द्वेष क्यों माना, सो सब ने सती की उत्पत्ति ही ईर्ष्यावश कराई थी। आरम्भ से ही यह स्पर्धा चली आ रही थी। ऐसी लीला न होती तो शिवजी खेल क्यों करते, वे तो सदा ब्रह्मानन्द सुख में ही निमग्न रहते। फिर शिव भक्तों का उद्धार कैसे होता? उनके कानों को पवित्र करने वाली शिव कथाओं की उत्पत्ति कैसे होती? इसलिये शिवजी ने यह लीला की।"

छप्पय

शिव होवें मम नाथ करें व्रत सती कुमारी।
विधिसन सुनि शिव प्रकट भये जहँ दक्ष दुलारी॥
देख तेज, तप, शील शम्भु के मन अति भाईं।
नित्य शक्ति निज जानि शिवा सहचरी बनाईं॥
चन्द्र चन्द्रिका प्रभा रवि, सम अभिन्न दोऊ भये।
दक्षयज्ञ के कलह में, प्राण सती ने तजि दये॥

देवादिकों का ब्रह्माजी के समीप जाना

[२०५]

अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः ।
शूलपट्टिशनिस्त्रिंशगदापरिघमुद्गरैः ॥
संछिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः सर्त्विक्सभ्या भयाकुलाः ।
स्वयम्भुवे नमस्कृत्य कात्स्न्र्येनैतन्न्यवेदयन् ॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, ६ अ०, १, २ श्लो०)

छप्पय

सुनिकें शौनक कहें—कथा अब सूत सुनाओ ।
पिटि कुटि देवनि करयो कहा सो बात बताओ ॥
सूत कहें—सब देव बहुत व्याकुल घबरावत ।
छिन्न-भिन्न सब अङ्ग गये विधि सन बिललावत ॥
घाव दिखावहिँ रोइ सब, अंग-भंग जो-जो भयो ।
देखि दशा दयनीय विधि, देवनिकूँ ढाढ़स दयो ॥

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! शिवजी की सेना से पराजित होकर समस्त देवतागण जिनके सभी अंग त्रिशूल, पट्टिश, शङ्ख, मदा, परिघ तथा मुद्गर आदि अस्त्रों से क्षत विक्षत हो गये थे । वे सब ऋत्विज् और सदस्यों को साथ लिये हुए, भय से व्याकुल हुए, ब्रह्माजी के पास पहुँचे और उन्हें नमस्कार करके आदि से अन्त तक सब कच्चा चिट्ठा कह सुनाया ।"

जिस सभा में बूढ़े-बूढ़े पुरुष न आवें, पूज्य पुरुषों की जहाँ अवहेलना की जाय, उस सभा की सफलता में सदा सन्देह ही बना रहता है। सर्वज्ञ पुरुष सभी समझ जाते हैं कि इस कार्य का आरम्भ किस भावना से किया गया है ? यदि कार्य सद्भावना से, शुद्धचित्त से किया हुआ हो, तो सभी श्रेष्ठ पुरुष उसमें सम्मिलित होते हैं। यदि उस कार्य की सचाई में सन्देह हो, तो कुछ लोग आ जाते हैं, कुछ नहीं आते। दक्ष के शिव भाग हीन यज्ञ को सुनकर भगवान् विष्णु और जगत् पितामह ब्रह्माजी समझ गये थे कि यह यज्ञ द्वेषवश किया गया है। यह सफल न हो सकेगा, अतः वे पहिले इस यज्ञ में नहीं गये। वही हुआ भी। यज्ञ ही विध्वंस नहीं हुआ, यज्ञकर्ता का भी अन्त कर दिया गया।

यज्ञ विध्वंस की बात सुनकर शौनकजी ने सूतजी से पूछा—"सूतजी ! हमने महाशक्ति के सती रूप में अवतार लेने की कथा तो सुन ली। अब हम यह जानना चाहते हैं, कि उस यज्ञ के विध्वंस के पश्चात् क्या हुआ ?"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाभाग ! जिस प्रकार विदुरजी के पूछने पर आगे का समाचार भगवान् मैत्रेयजी ने उन्हें सुनाया, वही मैं भी आपसे कहता हूँ।" दक्ष यज्ञ विध्वंस की कथा कहने के अनन्तर मैत्रेय मुनि उसी प्रसङ्ग को चालू रखते हुए आगे का प्रसङ्ग कहने लगे।

मैत्रेय मुनि बोले—"विदुरजी ! जब वीरभद्र शिवगण तथा हर पार्षदों के सहित सबकी कुटाई, पिटाई, मरम्मत करके कैलाश लौट गये, तो सभी देवता, ऋषि हाय-हाय करके रोने लगे। कोई अपने टूटे हाथ को देखकर रोता, कोई फूटी आँखों तथा कटे कानों के कारण ही क्रन्दन करता। कोई चपतों की पीड़ा से चिल्लाता, कोई कटे पैरों के ही कारण हाय-हाय करता। सारांश यह कि सभी क्षत-विक्षत हुए रुदन करने लगे। कुछ ने

कहा—"ये शिवगण बड़े असभ्य, बड़े उद्धत तथा बहुत ही क्रोधी हैं।" इसे सुनकर सभी इधर-उधर चौकन्ने होकर देखने लगते कि कोई सुन तो नहीं रहा है। कुछ कहते—"भैया, बड़ा अन्धेर हुआ, कुछ उपाय करना चाहिये। यह तो सरासर अन्याय है सर्वथा अन्धेर है, न पूछ, न ताछ, यह तो निरंकुशता है, सोलहों आने अराजकता है।"

यह सुनकर कोई कहता—"अच्छा, मान लो अन्धेर ही सही, तो तुम क्या कर सकते हो? कोई दूसरा अन्याय करे; तो प्रजा राजा की शरण में जाती है। जब राजा अन्धेर करने लगे तो प्रजा किसकी शरण में जाय? अब शिवजी से बड़ा कौन है? वे ही चराचर विश्व के स्वामी हैं। माता क्रुद्ध होकर बच्चे को मारे, तो बच्चा माता की ही गोदी में दौड़ता है, उसी का पल्ला पकड़ता है, उसे दूसरी कोई शरण नहीं; अन्य आश्रय नहीं। अब तो शिवजी की शरण जाने से ही निस्तार हो सकता है तभी सबके दुख दूर हो सकेंगे।"

इस पर कई एक साथ भयभीत होकर कहने लगे—"नहीं, भैया! शिवजी के यहाँ कोई भूलकर भी मत जाना। वहाँ गये नहीं कि फिर मरम्मत होगी। वहाँ कोई धनाधोरी नहीं। वहाँ कोई पूछने वाला भी नहीं। यहीं जब रुद्रगण उन्मत्त हो गये, तो शिवजी के सम्मुख तो वे न जानें क्या कर डालें।"

यह सुनकर वही फिर कहता—"कुछ भी हो, बिना शिव-शरण गये सुख नहीं, शान्ति नहीं, कल्याण नहीं, आपत्तियों से छुटकारा नहीं। कोई उपाय सोचो कि शिवजी हमें देखते ही अभय दान दे दें।"

इस पर भृगु मुनि बोले—"भैया, रुद्र तो हैं क्रोधावतार। वे अपनी प्रिया के वियोग से आजकल बड़े कुपित हो रहे हैं, कहीं

उन्होंने तीसरा नेत्र खोल दिया, तो सब-के-सब भस्म हो जाओगे। इसलिये हमारी सम्मति तो यह है—सब मिलकर प्रजापतियों के पति भगवान् स्वयंभू ब्रह्मदेव के चरणों में चलें। वहाँ पहुँचकर वे जैसी सम्मति दें, जो करने को कहें, वही करना चाहिये। यदि वे शिवजी की सेवा में ही जाने की आज्ञा दें, तो उन्हें साथ लेकर चलेंगे। उनके साथ रहने से शिव पार्षदगण, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस आदि कुछ भी न बोलेंगे। शिवजी भी उनका बहुत आदर करते हैं।"

यह सम्मति सबको अच्छी लगी। सभी अपने घावों पर पट्टी बाँधकर, कोई किसी के ऊपर चढ़कर, कोई किसी को उठाकर अपने-अपने विमानों में चढ़कर ब्रह्मलोक की ओर चले।

दूर से ही ब्रह्माजी ने अन्धे, लूले, अङ्ग-भङ्ग, क्षत-विक्षत देवताओं और ऋषियों को आते देखा; तभी समझ गये कुछ दाल में काला है। यज्ञ में गड़बड़ी पड़ गई। ब्रह्माजी तो सब जानते ही थे। उनसे भूत, भविष्य तथा वर्तमान की कोई बात छिपी तो थी नहीं। फिर भी शिष्टाचार के नाते सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए कहने लगे—"अरे, यह तुम लोगों की ऐसी दशा क्यों हुई? किनसे तुम्हारा युद्ध हुआ? किन्होंने तुम्हें इस प्रकार अङ्गहीन बना दिया?"

यह सुनकर भृगुजी अपने स्वभावानुसार दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए ज्यों ही बोले, त्यों ही हाथ ऊसर मैदान में पड़ा। दाढ़ी मूँछ तो सफाचट्ट थी; इसलिये अपनी लज्जा को छिपाने के लिये ठोढ़ी खुजाते हुए बोले—"महाराज, कुछ मत पूछिये, हम आपके ही बल भरोसे तो सब कुछ करते हैं, और आप समय पर पधारते नहीं।"

ब्रह्माजी ने गम्भीरता के साथ कहा—"बात बताओ, क्या हुआ ?"

बिगड़कर भृगुजी बोले—"हुआ क्या महाराज ! छीछालेदर हुई। दक्ष ने यज्ञ किया, उसमें शिवजी का भाग नहीं निकाला, न शिव सती को बुलाया। सती पितृ-स्नेह से शिवजी की इच्छा

के विरुद्ध चली आईं। दक्ष ने उनका आदर नहीं किया। वे योगाग्नि में जलकर भस्म हो गईं। इस पर क्रोध करके शिवजी ने वीरभद्र को उत्पन्न करके अपने भूत, प्रेत, पिशाच आदि शिव-गणों के सहित दक्ष यज्ञ विध्वंस करने भेजा। उन सब उजड्डों के स्वभाव को तो आप जानते ही हैं। हाथों में त्रिशूल, पट्टिश, खड्ग, गदा, परिघ, मुद्गर आदि लिये हुए यज्ञ मण्डप में आये और भूखे बाघों की भाँति सब पर टूट पड़े। न किसी की प्रतिष्ठा का ध्यान, न किसी के मान सम्मान का शील सङ्कोच। जो सामने आया उसी की मरम्मत कर दी। जो देखा उसी पर दे दनादन मार। मारते-मारते किसी की कचूमर निकाल दी, किसी का हलुआ बना दिया, किसी को अग्नि में ही चटर-मटर कर दिया। एक साथ भूकम्प-सा आ गया, यज्ञ मण्डप में भगदड़ मच गई। आप होते, तो यह काण्ड काहे को होता। शिवजी के न आने से आप दोनों देव भी नहीं पधारे। सब गुड़ गोबर हो गया। देखिये मेरी दाढ़ी मूछ ही दुष्टों ने उखाड़ ली।"

अपनी हँसी को रोकते हुए ब्रह्माजी ने पूछा--"दाढ़ी मूँछ उखाड़ने से उन्हें क्या मिल गया ?"

रोष के साथ हाथ फटकाते हुए दाँत पीसकर भृगुजी बोले--"मिल क्या गया पत्थर ! उजड्ड ही जो ठहरे। अब उनसे कौन पूछे, जो उनके मन में आया किया, भग देवता की आखें फोड़ दीं, पूषा के मुख में एक भी दाँत नहीं छोड़ा। सर्वथा बत्तीसी झाड़कर पहाड़ की कन्दरा के समान पोला मुख बना दिया। किसी का हाथ तोड़ दिया, किसी का पैर तोड़ दिया। प्रजापति दक्ष का सिर काटकर जलती अग्नि में हवन कर दिया।"

आश्चर्य के साथ ब्रह्माजी ने पूछा--"अरे, दक्ष को मार डाला ? और किस-किस के प्राण ले लिये ?"

इस पर भृगुजी बोले--"प्राण तो महाराज ! और किसी के

नहीं लिये, किन्तु कुटाई सबकी इस निर्दयता से की कि सभी को छटी तक का दूध याद आ गया। इससे मार डालते तो अच्छा था।"

ब्रह्माजी ने कहा—"भैया, तुम लोगों ने भी तो अन्याय किया था। जो लोग उन्नति चाहते हों, उन्हें तेजस्वी पुरुषों से कभी भी विरोध न करना चाहिये।"

भृगुजी ने कहा—"महाराज, हमारा क्या विरोध ? ससुर जमाई की घरेलू लड़ाई थी, बीच में हमारी कुटाई व्यर्थ ही हुई।"

यह सुनकर ब्रह्माजी रोष के स्वर में बोले—"तुम्हारा अपराध क्यों नहीं। तुम लोगों ने ही तो उसे बढ़ावा दे-देकर आकाश में चढ़ा दिया। तुम यदि उसके अन्याय का समर्थन न करते तो उसका कभी ऐसा शिव-भागहीन यज्ञ करने का साहस ही न होता। तुम्हें ऐसे यज्ञ को छोड़कर चले आना चाहिये था। तुमने लोभवश यह सब किया। भगवान् शङ्कर तो यज्ञ-भाग के अधिकारी क्या समस्त यज्ञ के एक मात्र स्वामी हैं। उनका ही तुम लोगों ने मिलकर बहिष्कार कर दिया, फिर तुम लोगों की कुटाई न होगी तो क्या मेरी होगी ?"

भृगु ने कहा—"अब महाराज ! जो हुआ सो तो हो गया। अब कोई ऐसा उपाय कीजिये कि यह मामला यहीं शान्त हो जाय, आगे बढ़ने न पावे, शिवजी और अधिक कोप करके हम सबका विनाश न कर दें।"

यह सुनकर ब्रह्माजी बोले—"अरे, भैया ! शिवजी तो आशुतोष हैं। वे इस प्रकार कोई द्वेष भाव थोड़े ही मानते हैं। तुम सब अपने मन के मैल को निकालकर शुद्ध चित्त से उनकी शरण में जाओ। वे तुम्हें अवश्य ही क्षमा कर देंगे। उनके मन में कोई राग द्वेष नहीं है।"

भृगुजी ने कहा--"महाराज ! मन में राग द्वेष न होता, तो हमारी ऐसी दुर्दशा क्यों कराते ?"

इस पर ब्रह्माजी बोले—"देखो, एक साथ कई कारण उपस्थित हो गये। प्रजापतियों के यज्ञ में मेरे सामने ही दक्ष ने ऐसी-ऐसी न कहने योग्य बातें उनके लिये कहीं, बुरी-बुरी गालियाँ उन्हें दीं, फिर भी सब सहते रहे। वे तो भूल ही गये, दक्ष ने उनके विरुद्ध यज्ञ करके उन्हें न बुलाकर उन सब बातों को पुनः नवीन बना दिया। शिवजी ने उनकी भी उपेक्षा कर दी। जब उनकी प्राण प्रिया पत्नी ने प्राणों का परित्याग कर दिया, तब तो उन्हें क्रोध आ जाना स्वाभाविक ही था। उनकी पत्नी यज्ञ में आकर भस्म न होती, तो वे बोलते ही नहीं। तुम लोग चाहे जो ऊटपटाँग करते रहते।"

भृगुजी बोले--"महाराज ! अब कैसे बात बने। दक्ष का यज्ञ कैसे पूर्ण हो ? उन्हें किसी प्रकार फिर जिलाइये, यज्ञ को किसी भाँति पूर्ण कराइये।"

यह सुनकर ब्रह्माजी बोले--"भैया, यह मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। यह सब भगवान् शङ्कर ही कर सकते हैं। उनकी शक्ति अपरिमेय है। उनके संकेत से ही संसार के सर्व कार्य हो रहे हैं। भगवान् विष्णु भी उनके तेज, बल, वीर्य, ऐश्वर्य की थाह नहीं पा सकते। फिर अन्य देवता, ऋषि-मुनियों की तो सामर्थ्य ही क्या है। यदि तुम लोग सोचते हो कि यज्ञ फिर से आरम्भ होकर यथाविधि समाप्त हो, तो इसका यही एक मात्र उपाय है, कि तुम सब मिलकर भगवान् शिव के चरणारविन्दों को पकड़ो। उनसे अपने अपराध के लिये क्षमा याचना करो। नहीं अभी तो यह मार कूट ही हुई है, शिव को कहीं सचमुच क्रोध आ गया, तो अपने तीसरे नेत्र से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को भस्म कर डालेंगे।"

भृगुजी ने कहा--"महाराज ! हमें तो उनसे बड़ा डर लगता

है। आप हमारे साथ चलें, तब तो हम जा भी सकते हैं, अकेले हमारा वहाँ जाने का साहस नहीं होता। वे चाहें कुछ न कहें, उनके जो आस-पास पार्षदगण हैं, वे बड़े धूर्त, बड़े उजड्ड तथा अत्यन्त ही असभ्य हैं, अबके कहीं उन्होंने मेरी नाक पर हाथ फेरा तब तो सर्वथा ऊसर भूमि ही हो जायगी।"

यह सुनकर ब्रह्माजी हँस पड़े और बोले--"अरे, भैया! घबराने की कोई बात नहीं, जो हो गया सो हो गया। अब तुम्हारे साथ कोई ऐसा बर्ताव न होगा। चलो, हम भी तुम्हारे साथ चलते हैं।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! इतना कहकर ब्रह्माजी सब देवता तथा ऋषि मुनियों को साथ लिये हुए शिवजा के दर्शनों के लिये कैलास की ओर चले।"

छप्पय

ब्रह्मा बोले—बहुत बुरो तुम सबने कीन्हों।
यज्ञनि के जो ईश तिनहिँ मख भाग न दीन्हों॥
किन्तु भई सो भई शम्भुकूँ जाइ मनाओ।
चरननिमहँ सब परौ यज्ञ पूरो करवाओ॥
ऋषि मुनि बोले—कृपानिधि! हम सब शिवतें बहु डरें।
हम सबकूँ सँग लै चलें, दारुन दुख सबको हरें॥

—०—

ब्रह्माजी का शिवजी के समीप गमन

[२०६]

स इत्थमादिश्य सुरानजस्तैः
समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ।
ययौ स्वधिष्ण्यान्निलयं पुरद्विषः
कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, ६ अ०, ८ श्लो०)

छप्पय

मानि सबनि की बात चले बिधि गिरि कैलासा ।
जहँ फूले वर वृक्ष केतकी पनस पलासा ॥
देव, यक्ष, गन्धर्व सिद्ध सब शिवकूँ सेवें ।
पशुपति तिनकूँ सदा मनोवांछित फल देवें ॥
बारह मास बसंत जहँ, कुहू-कुहू कोकिल करहिँ ।
बिहरें खग मृग, बिहँगवर, करि कलरव मनकूँ हरहिँ ॥

इसी संसार में जिन्हें सजीव सौन्दर्य निहारना हो उन्हें शैलराज हिमांचल की शरण जाना चाहिये। हिमालय के वे उत्तुंग शिखर अपनी श्री को वायुमंडल में बिखेरकर संसार को

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं--"विदुरजी ! भगवान् ब्रह्मा उन देवताओं को इस प्रकार समझा बुझाकर पितरों, प्रजापतियों तथा देवताओं के सहित ब्रह्मलोक से शिवजी के परम प्रिय पर्वतराज कैलास को गये ।"

शोभित बना रहें हैं। कैलास, लोकपाल, सतपथ के वे स्वच्छ हिमाच्छादित शिखर शोभा और सौन्दर्य का साकार स्वरूप संसार के सम्मुख रख रहे हैं। काक भुसुण्ड के वे शुभ्र बादलों के समान उन्हीं से सटे हुए शिखर अपनी महानता, निर्जन कोलाहल शून्य स्थल में प्रदर्शित कर रहे हैं। यदि देवराज इन्द्र ने इन सबके पंख न काट दिये होते,तो हम उत्सवों पर उन्हें बुलाया करते,सभा मण्डप के ऊपर पंख फैलाये, दूध के फेन के समान, हिम से ढके ये पर्वत कितने भले लगते। हमारे उत्सवों की कैसी शोभा होती। बच्चे सब एक दूसरे के कन्धों पर चढ़कर उन्हें छूते, ठण्ठे-ठण्ठे लगने से उँगलियाँ सुन्न हो जातीं। कैसा आनन्द आता ? किन्तु शचीपति इन्द्र ने सब गुड़ गोबर कर दिया। सबके पंख काटकर सभी को अचल बना दिया। अब वहाँ बरफ से मरने कौन जाय ? शोभा देखते-देखते जहाँ रुई के समान ऊपर से बरफ की बरसा हुई, वहीं जय-जय सियाराम। फिर शरीर सड़ने का भी नहीं। हजारों लाखों वर्ष तक बरफ में ढका सुरक्षित पड़ा रहेगा। यदि बरफ का भय न हो, इस पेट में भी कोई बड़ा-सा पत्थर जम जाय तथा यह डाइन भूख हमारा पिंड छोड़ दे और लोक की वासना भी नष्ट हो जाय, तो अपने राम तो वहीं चैन की वंशी बजावें। क्यों उस अनुपम सौन्दर्य को छोड़कर इस कोलाहल पूर्ण, हाय-हाय वाले संसार में आवें। वे पुरुष धन्य हैं, उनके नेत्र सफल हैं, जिन्होंने गिरिराज हिमालय के शिरोमुकुट कैलास पर्वत के दर्शन किये हैं—सुनते हैं। वर्तमान कैलास से भी परे, शिवजी का दिव्य कैलास है। अहा ! जब इस कैलास को देखते-देखते ही हमारी आँखें तृप्त नहीं होतीं, तो न जाने वह दिव्य कैलास कैसा होगा ? वहाँ तो मनुष्यों की गति ही नहीं देवता तथा सिद्ध ही वहाँ जा सकते हैं।

मैत्रेय मुनि कहते है—"विदुरजी ! लोक पितामह ब्रह्माजी को

आगे करके समस्त देवतागण, ऋषिगण तथा पितरगण अपने-अपने विमानों पर चढ़कर कैलास की ओर चले। ब्रह्म लोक से यह शिष्टमण्डल जिसके सभापति भगवान् ब्रह्मा थे, तपलोक में आया, वहाँ तपलोक निवासी ऋषियों ने भगवान् चतुरानन का स्वागत किया और कुछ देर ठहरने की प्रार्थना की। अपने हंस पर बैठे-ही-बैठे भगवान् लोक पितामह ने उनके स्वागत को स्वीकार करते हुए कह दिया—"हम बहुत आवश्यक कार्य से जा रहे हैं, ठहर नहीं सकते।" इसी प्रकार जनलोक और महर्लोक वालों ने भी दिव्य पुष्प वर्षा कर सबका आदर सत्कार किया, किन्तु लँगड़े, लूले, क्षत, विक्षत देवता, पितरों और मुनियों को वह स्वागत अच्छा नहीं लगा। इन्द्रलोक को बचा कर सुमेरु के उत्तर कोने पर धनद कुबेर की अलकापुरी के समीप कैलास पर उतरे।

कैलास की ठंडी-ठंडी वायु लगते ही सबकी पीड़ा भाग गई, सभी एक दिव्य सुख का अनुभव कर रहे थे। कैलास पर्वत को निरखते ही सबका मन उल्लास से भर गया। सभी का मन मयूर नृत्य करने लगा। बहुत से देवगण तथा मुनिगण ऐसे थे, जो आये भी थे तो सर्र से विमान से निकल गये। आज सभी ने स्वस्थ चित्त होकर कैलास के दर्शन किये। शिव के सम्मानार्थ सभी अपने-अपने विमानों से उतर कर पैदल ही चल रहे थे। वहाँ उन्होंने बहुत से सिद्धों को तपस्या करते देखा। बहुत से समाधि में ऐसे मग्न थे कि उन्हें संसार का भान ही नहीं था। प्राणों का निरोध करके वे ब्रह्मसुख का अनुभव कर रहे थे। कुछ को देखकर मुनियों ने भगवान् ब्रह्मदेव से पूछा—"प्रभो! यहाँ ये सभी सिद्ध अपनी उग्र साधना से हुए हैं या और भी कोई कारण है?"

ब्रह्माजी ने कहा—"देखो, भाई, सिद्धों की बहुत-सी श्रेणियाँ

होतो हैं। उनके बहुत से भेद हैं। सभी सिद्ध एक-सी ही साधना नहीं करते।"

यह सुनकर अत्यन्त ही सुन्दर रूप वाले बहुत से सिद्धों को सामने दिखाकर देव मुनियों ने पूछा—"महाराज! ये किस प्रकार के सिद्ध हैं?"

ब्रह्माजी बोले—"सिद्ध एक उपदेवों की जाति है। इस जाति में जो उत्पन्न होते हैं, वे जन्मतः सिद्ध कहलाते हैं। इनमें उसी प्रकार स्वाभावकी सिद्धि होती है, जैसे पक्षियों को उड़ने की, जल जन्तुओं को जल में स्वाँस बन्द करके रहने की सिद्धि होती है। उनके यहाँ जो उत्पन्न होते हैं जन्मना सिद्ध कहलाते हैं, ये बड़े सुन्दर होते हैं, तुम इन्हें देख नहीं रहे हो, अग्नि के समान तेज पुञ्ज दिखाई देते हैं।"

यह सुनकर देवता पितरगण आगे चले, आगे कुछ और सिद्ध दिखाई दिये। मुनियों ने कुतूहल वश पूछा—"प्रभो! ये किस श्रेणी के सिद्ध हैं?"

यह सुनकर ब्रह्माजी बोले—"देखो, भैया! इस कैलास पर्वत पर एक औषधि होती है, उसे एक विशेष मुहूर्त में उखाड़कर लाते हैं, फिर उसे एक विशेष प्रक्रिया से घोटते हैं, कई औषधियाँ उसमें मिलाकर उसकी मटर की भाँति गोलियाँ बनाते हैं। उन गोलियों को जो भी खा ले वही सिद्ध हो जाता है। एक ऐसी औषधि है, उसे जो भी पैर में लगा ले वही जल पर पृथ्वी की भाँति चल सकता है। मुँह में दबा ले तो जहाँ चाहे उड़कर जा सकता है। आखों में आँज ले तो उसे विश्व ब्रह्माण्ड की वस्तुएँ एक स्थान पर बैठे-बैठे दिखाई दे जाती हैं। पृथ्वी के नीचे अनन्त सुवर्ण राशि, अनन्त धन भरा पड़ा है। धन का दूसरा नाम वसु भी है। वसु-धन को जो धारण करे उसी का नाम वसुन्धरा है, इसीलिये पृथ्वी का नाम वसुन्धरा है वह सिद्ध जहाँ से चाहे,

जितना चाहे धन निकाल सकता है, उसे कुछ कमी नहीं। उस औषधि के प्रभाव से सिद्ध सब कुछ कर सकते हैं। सभी सिद्धियाँ उन्हें औषधि के द्वारा ही प्राप्त हो जाती हैं।"

यह सुनकर मुनियों को बड़ा आश्चर्य हुआ, जो अल्प सिद्धि वाले मुनि थे, सोचने लगे—"हमें भी वह औषधि मिल जाती तो हम भी बिना श्रम के सिद्धियों का चमत्कार दिखाते।"

आगे चलकर एक और सिद्धों का झुण्ड दिखायी दिया। उनकी विचित्र चर्यायें थीं। कोई एक पैर से खड़े थे, तो कोई काँटों पर सो रहे थे, कोई अग्नि जलाकर धूम पी रहे थे, तो कोई नदी के ठण्डे जल में खड़े तपस्या कर रहे थे। कोई गीले वस्त्र पहिने थे, तो कोई वल्कल वस्त्र धारण किये थे। कोई नंगे थे, तो कोई भस्म ही लपेटे थे। कोई पेड़ पर उलटे लटक रहे थे, तो कोई पञ्चाग्नि ताप रहे थे। कोई गिरे हुए दानों को बीन रहे थे, तो कोई फलों को हिला रहे थे, कोई कन्द खोद रहे थे, तो कोई पत्तों को ही बटोरकर चबा रहे थे। कोई विशेष क्रिया द्वारा वायु को ही पी रहे थे, कोई इंगुदी फलों—हिंगोटाओं—को ही कूट रहे थे। कोई प्राणायाम कर रहे थे, तो कोई समाधि में ही मग्न थे। कोई पत्थरों से अपने शरीर को कूट रहे थे, कोई अङ्गों को काट-काटकर पक्षियों को खिला रहे थे। कोई अग्नि में हवन कर रहे थे, तो कोई उपवास परायण थे, कोई मुण्डी थे, कोई शिखी थे। कोई जटा-जूटधारी थे, कोई नाचकर कृष्ण-कीर्तन कर रहे थे, तो कोई मौनव्रत धारण करके ध्यान में मग्न थे।

इन सबको देखकर कुतूहलवश पितरों ने पूछा—"प्रभो! ये किस प्रकार के सिद्ध हैं?"

ब्रह्माजी ने कहा—"भैया, ये तपःसिद्ध हैं। तपस्या के द्वारा इन सब ने सिद्धि प्राप्त की है। शरीर को क्लेशों द्वारा तपाने का ही नाम तप है, इनमें निराहार रहना—उपवास करना—यह सबसे

बड़ा तप है, क्योंकि मनुष्य सब कुछ सह सकता है, किन्तु भूख को नहीं सह सकता। अपने प्यारे-से-प्यारे सगे सम्बन्धी मर जाते हैं फिर भी यह कुट्टिनी बुभुक्षा नहीं मानती। इस पर जिन्होंने विजय प्राप्त कर ली है, वही तपस्वी है, वही सिद्ध है। ये विविध क्रियाओं द्वारा भगवान् की आराधना कर रहें हैं।"

मुनियों ने पूछा—"महाराज! यह तो तामस तप रहा, इस प्रकार काया क्लेश से तो अज्ञान प्रकट होता है?"

ब्रह्माजी ने कहा—"तामस ही सही, है तो तप। संसार त्रिगुणात्मक है। सभी अपने स्वभावानुसार साधन करते हैं। तमागुण प्रकृति के लोग सात्त्विक साधन कर ही नहीं सकते, उनके लिये तामस ही ठीक है। किसी प्रकार भगवान् की आराधना तो करते हैं। रही अज्ञान की बात, सो सभी साधन अज्ञान में ही हो सकते हैं, ज्ञानी को साधन की क्या आवश्यकता? इसलिये भगवान् के उद्देश्य से जो भी कुछ किया जाय ठीक ही है। उलटे सीधे घूम फिरकर सबको वहीं आना है, क्योंकि लक्ष्य तो सबका एक ही है।"

आगे बढ़ने पर बहुत से हाथ में माला लिये जप परायण पुरुषों को देखकर मुनियों ने पूछा—"भगवन्! ये किस प्रकार के सिद्धों में से हैं?"

ब्रह्माजी ने कहा—"भगवान् की अनेक मूर्तियाँ हैं, उनमें एक मूर्ति मंत्र भी है। इसलिये उन अमूर्त भगवान् को मंत्र मूर्ति कहा है। मन्त्र को उसके अर्थ की भावना करते हुए एकाग्रचित्त से निरन्तर जप करते रहने से निश्चय ही सिद्धि होती है। जप सिद्धि सबसे श्रेष्ठ मानी गयी है। यह महाभाग मंत्र जप द्वारा ही सिद्ध हुए हैं। सिद्ध होने पर भी स्वभावानुसार जप ही करते रहते हैं, क्योंकि इसमें इन्हें रस मिला है, अब दूसरे कार्यों की ओर इनकी प्रवृत्ति ही नहीं, उन मन्त्र मूर्ति भगवान् की अपने

इष्ट मन्त्र द्वारा आराधना करते रहना ही इनका एकमात्र व्यापार रह गया है।"

आगे चलकर यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ध्यान, धारणा और समाधि में मग्न मुनियों को देखकर देवताओं ने पूछा--"प्रभो ! ये किस श्रेणी के सिद्ध हैं ?"

लोक पितामह ब्रह्माजी ने कहा--"ये अष्टाङ्ग योग के द्वारा सिद्ध हुए हैं। ये राजयोगी बड़े नियम संयम से रहकर, अपनी भूमिका को दृढ़ करते हैं। संयम ही इनका शस्त्र है। प्राणायाम ही इनका परम बल है। इसी के द्वारा ये जीव और ब्रह्म का योग करते हैं। प्राणों के निरोध से मन का निरोध स्वतः हो जाता है, अतः ये प्राण वायु को वश में करके सदा समाधि मग्न रहते हैं।"

इस पर पितरों ने पूछा--"ये सब-के-सब सिद्ध यहाँ कैलास पर ही क्यों एकत्रित हुए हैं, इन्हें और कहीं स्थान नहीं था।"

यह सुनकर हँसते हुए ब्रह्माजी बोले--"भैया, और कहाँ जायँ, समस्त सिद्धियों के दाता तो सदाशिव ही हैं। सिद्धियों के स्वामी तो शङ्कर ही हैं। शिव की आराधना के बिना सिद्धि असम्भव है। हम सब भी सिद्धि के निमित्त शिव की ही शरण में जाते हैं, विष्णु शिवाराधना करके ही सिद्धि लाभ करते हैं, सनातन पुराण पुरुष श्रीकृष्ण ने भी शिवार्चन ही किया है, बड़े-बड़े ऋषि महर्षि शिव के पूजा के द्वारा ही अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सके हैं, इसलिये सिद्धों का प्रधान अड्डा कैलास ही है।"

इस प्रकार देवता, ऋषि, मुनि, पितर आदि ब्रह्माजी से विविध प्रश्न पूछते हुए शनैः-शनैः कैलास की शोभा निरखते हुए पैदल ही आगे बढ़ने लगे। वहाँ कई सिद्ध ध्यान में मग्न थे, कहीं किन्नर अपनी किन्नरियों के साथ विहार कर रहे थे, कहीं

गन्धर्व गन्धर्वियों के साथ बैठे गीत गा रहे थे, कहीं अप्सरायें नृत्य कर रही थीं। कहीं देव उपदेव विहार कर रहे थे।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! इस प्रकार के कैलास को देखकर इन सब का चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। जिधर इनकी दृष्टि जाती उधर ही अटक जाती, ब्रह्माजी कुछ शीघ्रता कर रहे थे, सबने हाथ जोड़कर कहा--"प्रभो ! शनैः-शनैः पधारें। आज हमें बड़ा आनन्द आ रहा है। आज हमें सब दिखाते हुए, सब शोभा का वर्णन करते हुए पधारें, यह अवसर बार-बार नहीं मिलने का है।"

भगवान् ब्रह्माजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और वे उस शैल शिरोमणि की शोभा निहारते हुए शनैः-शनैः चलने लगे।"

छप्पय

चहुँ दिशि देखे सिद्ध विविध साधन सब साधत।
जप, तप, जोग विराग आदितें हरि आराधत॥
ओषधितें इक सिद्ध अपर मन्त्रनिकूँ जपिकें।
कोई ठाढ़े रहें बहुत नानाविधि तपिकें॥
सिद्धेश्वर शिवकूँ सदा, सेवें सतत सुसिद्धगन।
पितर देवता ऋषिनि को, निरखि भयो अति मुदित मन॥

कैलास की अनुपम शोभा

[२०७]

मयूरकेकाभिरुतं मदान्धालिविमूर्च्छितम् ।
प्लाविते रक्तकण्ठानां कूजितैश्च पतत्त्रिणाम् ॥
आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान् कामदुघैर्द्रुमैः ।
व्रजन्तमिव मातङ्गैर्गृणन्तमिव निर्झरैः ॥*

(श्री भा० ४ स्क०, ६ अ० १२, १३ श्लोक)

छप्पय

झरना झर-झर झरहिँ मनों गिरि हँसिकै बोलत ।
कारे घूमें नाग मनहुँ नग इत उत डोलत ॥
कल्पवृक्ष की उठी शाख हिलि मनहुँ बुलावहिँ ।
थकित पथिक लखि अतिथि भावतें दया दिखावहिँ ॥
आम अनार अशोक वर, बट कदम्ब पाटल बकुल ।
पीपर पाकर विटप शुभ, शोभें बहु शतदल कमल ॥

---

* कैलास पर्वत पर मयूर बोल रहे थे, मदोन्मत्त मलिन्द गूँज रहे थे, कोकिलायें कुहू-कुहू कर रही थीं, विहंगम कलरव कर रहे थे । कल्पवृक्षों की शाखायें हिल रही थीं, मानों वे अपने ऊँचे हाथों को हिलाकर पक्षियों को—ब्राह्मणों को—बुला रही हों । इधर-उधर बहुत से हाथियों के घूमने से ऐसा लगता था, मानों वह स्वयं चल रहा हो । झरनों की झनकार से ऐसा लगता था, मानों बातें कर रहा हो ।

जहाँ की शोभा वहीं सुन्दर लगती है। वन की वस्तुएँ वन में ही सुखद प्रतीत होती हैं। साहित्य में वन की शोभा का वर्णन सबसे सुन्दर, सबसे सुखद समझा गया है। वास्तव में हमें नगरों में सुख नहीं; यहाँ की शोभा तो कृत्रिमता से नष्ट हो जाती है, प्रकृति यहाँ लजाकर घूँघट मार लेती है, भीड़-भाड़ से वह नववधू की भाँति सिकुड़कर अपने समस्त अङ्गों को अपने आप में समेट-कर वस्त्रों में ढक लेती है। इसीलिये नगरों में उसके चमकीले बनावटी वस्त्र ही दिखाई देते हैं। उसका कमल के समान मनोहर मुख, अङ्गों का सौष्ठव, उसका लावण्य माधुर्य, उसके आकर्षक हाव-भाव कटाक्ष यहाँ कहाँ दिखाई देते हैं? निर्जन अरण्यों में, मायिक कोलाहल रहित वनों में, हिमाच्छादित गिरि गुहाओं में, कमनीय कन्दराओं में, सुन्दर शैलशिखरों के प्रान्तों में, प्रकृति देवी लज्जा को छोड़कर, घूँघट को हटाकर, निःशंक होकर नाचती है। वहाँ वह नववधू न होकर बालिका बन जाती है। पुत्री भाव को प्राप्त हो जाती है। लड़की ससुराल में ही लजाती है, वहीं झट-पट घूँघट मार लेती है। बाप के घर में तो वह निर्भय हो जाती है। अंचल सिर से खसक जाय कोई चिन्ता नहीं। बहिनों से, सखी सहेलियों से निर्भय होकर जोर-जोर से बातें करती है, हँसती है। वहाँ वह अपनी शोभा को बखेर देती है। अपने चन्द्र मुख पर से पर्दा हटा देती है। जिसे उसका अनवद्य सौन्दर्य देखना हो; वह शान्त एकान्त वनों और पर्वत-शिखरों पर जाय। वहाँ उसका यथार्थ रूप दिखाई देगा।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी, सबको साथ लिये हुए भगवान् ब्रह्मा आगे-आगे चल रहे थे। नाना धातुओं से मंडित, चित्र विचित्र फल पुष्पों से सुशोभित, उस सुन्दर शिखर वाले शैल की शोभा निहारते हुए, देवता, ऋषि तथा पितृगण उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। अनेक जातियों के मृगों के झुण्ड वहाँ

स्वच्छन्द विहार कर रहे थे। मधु के लोभी उन्मत्त भ्रमर चारों ओर गुञ्जार कर रहे थे। कोकिल अपने कमनीय कण्ठ से कुहू-कुहू करके चहक रही थी। वृक्ष हिल रहे थे। पक्षी उड़ रहे थे, झरने झर रहे थे, खग-मृग आदि किलोलें कर रहे थे। नाना भाँति के नंग-धड़ङ्गे अवधूतों की भाँति खड़े थे। उनकी शाखायें ही मानों अनेक बाहुएँ थीं। पत्ते ही शरीर के रोम थे। वृक्षों की की असंख्य जातियाँ थीं। शाल हैं, तमाल हैं, ताल हैं, कोविदार हैं, आसन हैं, पारिजत हैं, आम हैं, जामुन हैं, कटहल हैं, बड़े नीबू हैं, छोटे नीबू, हजारा नीबू, विजौरा नीबू, आदि अनेक भाँति के नीबू थे, संतरा, कमला, नारंगी, सिलहटी भाँति-भाँति के नारंगियों के पेड़ थे। कदम्ब, नीम, नाग, पुन्नाग, चम्पक, पाटल, अशोक, मौलश्री कुन्द, कुरव आदि पहाड़ी वृक्ष थे। कमलों का तो कुछ कहना ही नहीं। स्थल कमल पहाड़ों की उन्हीं चोटियों पर होते हैं, जहाँ सदा बरफ जमी रहती है, वे बरफ को फोड़कर निकलते हैं। छुई-मुई की भाँति कोमल होते हैं, बड़ी उत्कट मादक गन्ध होती है। वे लाल, नीले, शुभ्र अनेक रङ्गों के होते हैं। स्थल कमलों का वहाँ वन खड़ा था, उनकी उत्कट गन्ध से सभी के सिर में चक्कर-सा आने लगा, इसलिये सब शीघ्रता से आगे बढ़े।

कुछ दूर चलने पर छोटे-बड़े सुन्दर स्वच्छ बहुत से जलाशय दिखायी दिये। जिनमें लाल, नीले, सफेद, गुलाबी आदि अनेकों रङ्गों के कमल खिल रहे थे। उनमें बहुतों में सौ-सौ पंखुड़ियाँ थीं बहुतों में हजारों थीं। आस-पास के वृक्षों पर मालती, मोगरा, माधवी आदि लतायें चढ़ रही थीं, वे अपने आश्रय दाताओं को कसकर अपने बहुपाशों में जकड़े हुए थीं।

बड़े-बड़े वृक्ष हिल रहे थे। परस्पर में मिल रहे थे, उनके ऊपर पुष्प खिल रहे थे। कटहल, गूलर, पीपर, पाकर, वट,

हिंगु, भोज-पत्र, सुपारी, जामुन, खजूर, हरड़, बहेड़ा, आँवला, प्रियाल, मधुक, इंगुदी आदि के वृक्ष अत्यन्त घने खड़े थे। उनके समीप बाँसों का ही वन था, वह इतना घना था कि कोई आदमी उसको पार कर ही नहीं सकता था। ठोस बाँस, पोले बाँस, छोटे बाँस, मोटे बाँस, पतले बाँस आदि बाँसों के बहुत भेद थे, वे परस्पर में वायु से हिल-मिलकर चर्र-मर्र करके अपनी भाषा में कुछ बातें कर रहे थे। छोटे-छोटे सरोवरों में खिले हुए नाना जाति के कमल बड़े ही भले मालूम होते थे, कुमुद, उत्पल, कह्लार, शतपत्र ये सब कमल की ही भिन्न-भिन्न जातियाँ हैं। उन पर चंचरीक मण्डरा रहे थे। उनके मुख को झुका-झुकाकर निर्भय होकर रस पी रहे थे। वायु से कमल कोष खिल रहे थे, मानों मधुकरों को मना कर रहे हों, रस पीने से बरज रहे हों, किन्तु रस लम्पट मधुकर कब मानने वाला ठहरा। मना करने पर भी वह न हटता था, न उड़ता था। इतने में ही झुण्ड-के-झुण्ड और भी भ्रमर आ गये। वह लम्पट भग गया। ऐसा व्यापार वहाँ निरन्तर हो रहा था। सरोवरों के समीप सारस, हंस, जल-कुक्कुट, जल-कौए आदि समीपवर्ती पक्षी उड़ रहे थे। मछलियाँ कमल की नाल को हिला रही थीं अपनी चमक-दमक से सरोवरों को चमचमा रही थीं। वन में इधर-से-उधर हरिन, वानर, सूकर, सिंह, रीछ, स्याही, नीलगाय, शरभ, बाघ, कृष्णमृग, भैंसे, जङ्गली गाय, कस्तूरीमृग और एक सूसक पहाड़ी शशक की भाँति का जानवर तथा अन्यान्य भी जङ्गली जाति के जीव जहाँ-तहाँ आ-जा रहे थे। बरफ के पहाड़ों पर एक ऐसा शशक के समान जानवर होता है कि छः महीने तो वह पृथ्वी पर रहता है, छः महीने पृथ्वी के नीचे दबा रहता है। स्वयं वह एक गुफा बनाता है, उसमें छः महीने का अपना भोजन जमा करता है और जब बरफ पड़ने लगती है, तो उसमें घुस जाता है।

तीन कोठरी-सी बनाता है। एक में भोजन रखता है। एक में शौचादि जाता है, एक में बैठा रहता है। बरफ का पहाड़ उसकी गुफा के ऊपर लग जाता है, उसे कोई चिन्ता नहीं। जब बरफ गल जाती है, तब वह अपनी गुफा से निकलता है। कैसा तपस्वी जीव है। उसे भी जङ्गली हिंसक मार डालते हैं, उसका चर्म अत्यन्त ही कोमल होता है। उसे महिलायें अपने गले में धारण करती हैं। उसको जोड़-जोड़कर बिस्तरे भी बनाते हैं, उसकी मज्जा अनेक रोगों में काम आती है। वह हिमाच्छादित शिखरों पर ही रहता है। देवताओं ने ऐसे तपस्वी जीव को देखकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया।

आगे बढ़ने पर सबने हर-हर करती हुई वृक्षखण्डों के साथ अठखेलियाँ खेलती हुई, नन्दा और अलकनन्दा नामक नदियों को देखा, जिनके किनारे स्थान-स्थान पर भगवती सती के स्नान के लिये सुन्दर स्वच्छ घाट बने हुए थे। वह पर्वत क्या था, विस्मयों का भण्डार था। एक-से-एक विस्मयकारी चित्त को चमत्कृत कर देने वाली वस्तुएँ वहाँ थीं। नदियों में स्वर्ग की अप्सरायें क्रीड़ा कर रही थीं। कोई नहा रही थी, कोई गा रही थी, कोई बजा रही थी, कोई खा रही थी, कोई पी रही थी, कोई जल उलीच रही थी, कोई शृंगार कर रही थी, कोई वेणी गूँथ रही थी, कोई केशपाश को सुलझा रही थी, कोई वक्षःस्थल में लगा कुम्कुम को जल में धो रही थी। उसी पीले पानी को पीकर हथिनी उन्मत्त-सी हो रही थीं। हाथी उनकी सूँड़-में-सूँड़ देकर किलोले कर रहे थे। देवाङ्गनायें हँस रही थीं, किसी की स्मृति कर रही थीं। देवता उनकी क्रीड़ाओं को देखकर विस्मित हुए वे अपने घावों की पीड़ा को भूल गये और अपने को स्वर्ग से भी अधिक सुखी अनुभव करने लगे।

सम्मुख अलकापुरी की झल-मल दिखायी देती थी। चाँदी

सुवर्ण आदि के नाना मणि-मुक्ता विभूषित विमान इधर-से-उधर फुर्र-फुर्र उड़ रहे थे, मानों तितिलियाँ उड़ रही हों। रङ्ग-विरङ्गे बादलों से युक्त आकाश में अपनी पत्नियों के साथ विमानों पर चढ़े उपदेव ऐसे ही लगते थे; मानों बिजली सूर्य के प्रकाश में मिलकर चन्द्रमा से लिपटी हुई वर्षान्त मेघों में चमक रही हो।

वह शिष्ट मण्डल कुबेर की अलकापुरी को एक ओर छोड़कर कल्पवृक्षों से परिपूर्ण, नाना भाँति के पुष्पों के गन्ध से सुगन्धित सौगान्धिक नामक वन में पहुँचा। वहाँ की शोभा तो वर्णनातीत थी। कमल कुसुम मण्डित सुन्दर सुहावने सलिल से परिपूर्ण सरोवरों को देखते हुए, किंपुरुष गन्धर्व और किन्नरों की पुष्प चुनती हुई युवतियों को निहारते हुए, वे आगे बढ़ रहे थे। सब भूल गये थे—अब हम कहाँ जा रहे हैं? सब अपने को एक दिव्य लोक में अनुभव कर रहे थे। कैलास इतना सुन्दर है, भगवान् वृषभध्वज की ऐसी विभूति है, इसका अनुभव आज सबको हुआ। सब अपने को धिक्कारने लगे—"हाय! इतने वैभव पूर्ण देव का हमने व्यर्थ ही अपमान किया। यज्ञ में उनका बहिष्कार करके हमने अत्यंत अपराध किया। पता नहीं पशुपति हमसे क्या कहेंगे? उनके सम्मुख हम कैसे मुँह दिखावेंगे।" वे यह सब सोच ही रहें थे कि उन्हें सामने ही एक बहुत बड़ा वट-वृक्ष दिखायी दिया। ब्रह्माजी ने दूर से ही सबको दिखाया—"देखो, यही विशाल वट है, जिसके नीचे शिवजी सदा निवास करते हैं।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! इतना सुनते ही सभी देवता, पितर तथा ऋषि मुनियों ने दूर से ही उस वटवृक्ष को प्रणाम किया, क्योंकि शिवजी के स्मरण से और कैलास के दर्शन से ही सबका अन्तःकरण पवित्र हो गया था। प्रणाम करके उनके हृदय में शिवदर्शनों की अत्यन्त उत्कट अभिलाषा

हुई। हृदय में अभिलाषा होते ही, आशुतोष सदाशिव भोलेनाथ तुरन्त दर्शन देते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।"

छप्पय

कमल कुसुम अति सरस विमल सरवरमहँ सोहें।
मँड़रावें मदमत्त मधुप-गन मुनि मन मोहें॥
रति विलासतें थकित चकित सुर रमनी न्हावें।
तनु-कुम्कुमकूँ धोई सलिलकूँ पीत बनावें॥
कहुँ किन्नर किंपुरुष गन, प्रानप्रया निज सँग लिये।
तनु पुलकित उल्लसित हिय, डोलें गलबाहीं दिये॥

ब्रह्मादि देवों को महादेवजी के दर्शन

[२०८]

तं ब्रह्मनिर्वाणसमाधिमाश्रितम्
व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षाम् ।
सलोकपाला मुनयो मनूनाम्
आद्यंमनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः ॥*
(श्री० भा० ४ स्क०, ६ अ०, ३९ श्लोक)

छप्पय

सम्मुख निरख्यो विशद् विटपवर वट को सुखकर ।
सौ योजन अति सघन स्वच्छ सुन्दर अति मनहर ॥
ता तरु तर तपयुक्त तापसनि मध्य महेश्वर ।
भूतनाथ भगवान विराजें शिव परमेश्वर ॥
अक्षमाल गल चन्द्र सिर, जटा मुकुट श्रीगंग युत ।
करहिँ ज्ञान उपदेश हर, जो पूछहिँ कछु ब्रह्मसुत ॥

संसार में सर्वत्र सुख है, सर्वत्र अभय है। हम दुख और भय की सृष्टि स्वयं कर लेते हैं। दूसरों को दुखी करेंगे, तो हमें अवश्य दुःख भोगना पड़ेगा। दूसरों को भय देंगे, तो हमें भी

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! जो भगवान् भूतनाथ अपनी बाईं भुजा से योगपट्ट का आश्रय लेकर ब्रह्म निर्वाण समाधि में आश्रित थे, उन मनुओं में आद्य मनु शिव को लोकपालों के सहित मुनियों ने प्रणाम किया।"

दूसरों से भय खाना पड़ेगा, क्योंकि एक ही आत्मा सब में व्याप्त है। इसलिये जो व्यवहार तुम्हें स्वयं बुरा लगे, उसका आचरण दूसरों के साथ मत करो। हम अपने पाप से दूसरों में पाप देखते हैं, अपने भय से भयभीत होते हैं। महान् पुरुषों का अपराध करके हम सोचते हैं, वे भी हमारी भाँति क्षुद्रता करेंगे; अतः हम उनके सम्मुख जाने में लज्जा करते हैं; किन्तु जिनकी आत्मा महान् है, जो महापुरुष महात्मा महेश्वर हैं, उन्हें पहिले तो किसी पर क्रोध आता ही नहीं, यदि परिस्थिति वश कभी किसी पर आ भी जाता है, तो वह पानी की लकीर के समान होता है, आया और विलीन हो गया। यही तो उनकी महानता है, इस महत्ता को महान् पुरुष ही अनुभव कर सकते हैं।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! जब कैलास की शोभा देखते हुए ब्रह्माजी के साथ देवता, पितर तथा ऋषि, मुनि शिवजी के निवास के समीप पहुँचे, तो दूर से ही उन्हें उनका विशाल वट-वृक्ष दिखाई दिया। वह सौ योजन ऊँचा था। पचहत्तर योजन की लम्बी-लम्बी शाखायें थीं। इतना सघन था कि वर्षा में एक बूँद पानी भी उसके नीचे नहीं आ सकता था। उसमें न पक्षियों ने नीड़ बनाये थे, न उस पर बैठकर वे बीट ही करते थे। उसके नीचे बैठकर असंख्यों सिद्ध ध्यान में मग्न रहते थे। उसी वट-वृक्ष के नीचे देवताओं ने दूर से देवाधिदेव महादेव को योगासन से विराजमान देखा। सती के भस्म जन्य रोष को उन्होंने त्याग दिया था। वे रोष हीन अन्तक के समान आसनासीन थे। समीप में ही उनके सखा और सेवक उत्तर दिशा के अधिपति कोषाध्यक्ष धनद कुबेर हाथ जोड़े हुए उनकी सेवा में उपस्थित थे। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन, नारद आदि ऊर्ध्व-रेता ब्रह्मा पुत्र वहाँ जिज्ञासु होकर सिर नवाये उनके चरणों में बैठे थे। शिवजी को कोई कर्त्तव्य नहीं, उनके लिये कोई विधि

नहीं, निषेध नहीं। विधि को बनाने वाले भी वे ही हैं। उनके लिये न कोई निषिद्ध कर्म है, न विहित; किन्तु फिर भी विश्व के कल्याण के लिये शुभ कर्मों का आचरण करके लोक संग्रह के निमित्त आदर्श उपस्थित करते हैं। विद्या, तप और समाधि आदि का आचरण करते हुए अपने आश्रितों को शिक्षा देते हैं।"

शिवजी एक कुश, मृगचर्म और वस्त्र के सुन्दर आसन पर विराजमान् थे। सम्पूर्ण शरीर में भस्म धारण किये थे। रुद्राक्ष की माला से उनका गला सुशोभित था। तपस्वियों के चिह्न दण्ड को वे धारण किये थे। विस्तीर्ण जटाओं को एकत्र करके उन्होंने मुकुट के समान जूड़ा बाँध लिया था। माथे पर द्वितीया का चन्द्र अपनी अद्भुत छटा दिखा रहा था; वे अपनी दाँयीं जङ्घा पर वाम चरण रखे, घुटने पर हाथ रखकर, तर्क मुद्रा से बैठे थे। आसन से बैठकर तर्जनी को अँगूठे से वे जोड़कर अन्य उँगलियों को आपस में मिलाकर जो आकृति होती है, उसे तर्क मुद्रा कहते हैं। गुरु लोग शिष्यों को इसी मुद्रा से उपदेश करते हैं, कथा-वाचक भी कथा कहते समय इसी मुद्रा को प्रदर्शित करते हैं, शिवजी उस समय नारद को उपदेश कर रहे थे, इसीलिये वे तर्क मुद्रा से विराजमान् थे। उनकी कलाइयों में रुद्राक्ष की छोटी-छोटी मालायें सुशोभित हो रही थीं। समीप में ही नारदजी हाथ जोड़े हुए विनीत भाव से नीचे आसन पर बैठे थे और योग सम्बन्धी कुछ प्रश्न कर रहे थे। शिवजी बड़ी गम्भीरता के साथ उनके प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। समीप में बैठे हुए अन्य सन्त-गण उनके उपदेशामृत का उसी प्रकार पान कर रहे थे, जिस प्रकार पूजा के पश्चात् भक्तगण बैठकर पञ्चामृत का पान करते हैं, अथवा बहुत से चकोर चन्द्रमा की किरणों से निकले हुए अमृत का एक भाव से पान करते हैं, अथवा प्रियतम के पास से

आये हुए सन्देश रूपी सुधा का जैसे प्रेमी जन श्रद्धा और उत्सुकता के साथ पान करते हैं।

भगवान भूतनाथ अपनी बाँई भुजा से योगपट्ट-आशा-का आश्रय ले रहे थे। इससे वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानों अपनी प्रिया के आश्रय से बैठे हों। वहाँ का वातावरण बड़ा ही शान्त था। उस शान्त वातावरण में सम्भ्रम की सहसा एक हिलोर आ गई। द्वारपाल ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"भगवन्! लोक पितामह ब्रह्माजी कुछ देवता ऋषि मुनियों के सहित आपके दर्शनों को खड़े हैं।" इतना सुनते ही बड़े सम्भ्रम के साथ सदाशिव सहसा अपने आसन से उठ बैठे। अपने पिता को आया हुआ सुनकर वे उनके आदर के निमित्त-उन्हें लेने के लिये-आगे बढ़े। सम्मुख ही ब्रह्माजी को देखकर भगवान् वृषभध्वज ने बड़ी नम्रता से उनके चरणों में प्रणाम किया। जब भगवान् सदाशिव प्रणाम कर चुके। तब क्रमशः वहाँ जितने भी सिद्ध, ऋषि, मुनि, यक्ष, गन्धर्व बैठे, सभी ने लोक पितामह ब्रह्माजी के चरण कमलों में श्रद्धा भक्ति सहित अपने-अपने नाम गोत्रों का उच्चारण करते हुए प्रणाम किया। ब्रह्माजी ने सबके प्रणाम को स्वीकार करके तथा सबका यथोचित सत्कार करके हँसते हुए अञ्जलि बाँधे शिवजी के दोनों हाथों को बड़े स्नेह से पकड़ लिया और अत्यन्त भक्ति दिखाते हुए बोले—"यह आप क्या कर रहे हैं? उलटी गङ्गा क्यों बहा रहें हैं?"

लज्जा का भाव प्रदर्शित करते हुए भगवान् भूतनाथ बोले—"महाराज, उलटी गङ्गा कैसी? पुत्रों का धर्म ही है, पिता के चरण कमलों में प्रणाम करना।"

हँसते हुए भगवान् चतुरानन बोले—"अजी, महाराज! आपका कौन पिता? आप ही सबके पिता-माता, स्वामी, सखा और सुहृद हैं। आप ही इस चराचर विश्व के एक मात्र अधि-

पति हैं। यह भुलावा किसी दूसरे को दीजिये। मैं तो आपके तत्त्व को जानता हूँ। पहिले नहीं जानता था, किन्तु भगवान् विष्णु ने मुझे आपके स्वरूप का बोध करा दिया। आप प्रकृति पुरुष दोनों से परे सनातन परम पुरुष अर्थात् पुरुषोत्तम हैं। इस सम्पूर्ण जगत् को आप ही ब्रह्मा बनके बनाते हैं, विष्णु बनके बढ़ाते हैं, रुद्र बनके अपने में लीन कर लेते हैं। अगणित, ब्रह्मा, विष्णु और महेश आपके सङ्कल्प मात्र से ही उत्पन्न होते हैं। यज्ञ और यज्ञ की विधि आपकी ही बनाई हुई है, उसके फलदाता भी आप ही हैं। ऐसे होकर भी आप मुझे शिष्टाचार वश प्रणाम कर रहे हैं, यह भी आपकी क्रीड़ा ही है।"

कैलासपति भगवान् महेश्वर ने ब्रह्माजी को उच्चासन पर बिठाया। अन्य सभी देवता, पितर तथा ऋषि मुनियों को भी बैठने की आज्ञा दी। जब सब स्वस्थ चित्त होकर बैठ गये, तब शिवजी ने कहा—"भगवन्! आप वेदगर्भ हैं, सबके जनक हैं, आप जगत् में सर्वश्रेष्ठ हैं। मेरे तथा अन्य प्रजापतियों के आप पिता तथा सम्पूर्ण चराचर विश्व के आप पितामह हैं। आपने ही साध्य साधन का भेद बताया है। आपने ही यज्ञ याग आदि को स्वयं करके इन शुभ कर्मों का प्रचार किया है, आपकी बनाई हुई सृष्टि में कुशल तो है? सर्वत्र मङ्गल तो है न?"

हँसते हुए ब्रह्माजी बोले—"भगवन्! संसार में तब तक कुशल कहाँ जब तक आपकी दया दृष्टि न हो। मङ्गल स्वरूप तो आप ही हैं। जहाँ आप नहीं पधारते वहाँ मङ्गल कहाँ? वेद और यज्ञों को प्रकट करने वाले तो आप ही हैं। दक्ष तो निमित्त मात्र था, वास्तव में यज्ञ करने वाले, कराने वाले, कर्ता, कर्म और कारण सब आप ही हैं। आप ही वेदों के रक्षक, मर्यादा के निर्माता; कर्मों के फलों के दाता, यज्ञ भागों के भोक्ता, यज्ञ यागों के विधाता और, दुखियों के दुःख के त्राता हैं। आप ही पापियों

को नरकादि गति देते हैं। पुण्यात्माओं को स्वर्ग आदि शुभ गतियों को देते हैं। कहीं-कहीं किसी कारण विशेष से इसके विपरीत भी देखा जाता है। अभी दक्ष-यज्ञ का उदाहरण हमारे सम्मुख प्रत्यक्ष है। दक्ष मेरे पुत्र थे, वेदज्ञ थे, क्रिया काण्ड में निष्णात वैदिक ब्राह्मण थे। उन्होंने परम पुण्यमय वैष्णव यज्ञ किया, पुण्य कर्म प्रारम्भ किया, किन्तु वह पूरा न हो सका। उसमें विघ्न हुए, क्योंकि उसने आपका आदर नहीं किया। आपकी उपेक्षा की। कैसा भी कर्म क्यों न हो, जहाँ आपकी उपेक्षा की जाती है, आपका बहिष्कार किया जाता है, वह पुण्य-प्रद कार्य भी पूर्ण नहीं होता, पुण्य फल को देने वाला नहीं हो सकता है।"

ब्रह्माजी की भूमिका से भगवान् भूतनाथ समझ गये कि ये सब लोग उसी दक्ष यज्ञ के सम्बन्ध में आये हैं; अतः बड़ी शांति के साथ वे बोले—"ब्रह्मन्! देखिये, दक्ष मुझे न बुलाते इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं थी। उनका यज्ञ था, चाहें जिसे बुलावें चाहें जिसे न बुलावें, किन्तु उनकी सगी पुत्री, कितने स्नेह से, कितनी उत्कण्ठा से उनके यहाँ गई, उसका वाणी से सत्कार न करना—क्या यह उनके लिये उचित था? इसी अपमान से उन्होंने अपने प्रिय प्राणों का परित्याग कर दिया। इसी से क्रोध आ गया, आप मेरे पार्षदों और गणों को तो जानते ही हैं, सभी महा क्रोधी हैं। मुझे क्रुद्ध देखकर वे और भी अधिक क्रुद्ध हुए और उन्होंने दक्ष के यज्ञ को विध्वंस कर दिया।"

यह सुनकर हँसते हुए ब्रह्माजी बोले—"अजी, महाराज! आपको तो क्रोध स्पर्श भी नहीं कर सकता। आपकी बात तो पृथक् रही। जो आपके भक्त हैं, आपमें अनुरक्त हैं, जिन्होंने अपनी अन्तरात्मा को आपके चरणारविन्दों में समर्पित कर दिया है, जो सबमें सर्वत्र सर्वान्तर्यामी आपको समान भाव से

व्याप्त देखते हैं तथा सम्पूर्ण जीवों को अपृथक् भाव से अपने में ही अनुभव करते हैं, ऐसे आपके चरणारविन्द मकरन्द-मत्त-मधुप भक्तगण भी प्रायः क्रोध नहीं करते, वे भी सहसा क्रोध के वशीभूत नहीं होते। फिर आपको कैसे क्रोध आ सकता है? क्रोध आना यह तो पाशविक वृत्ति है। पशुओं का व्यापार है, बुद्धिमान पुरुष कभी क्रोध को स्थान नहीं देते। क्रोध प्रायः आता है, अपराध पर। आप तो स्वयं सबके स्वामी और जनक हैं। आपका अपराध कर ही कौन सकता है? और आपसे द्वेष करके जीवित ही कौन रह सकता है?"

इस पर भगवान् कैलासपति बोले—"बताइये, भगवन्! मैंने दक्ष का क्या बिगाड़ा था? आपके सम्मुख ही बिना बात उन्होंने मुझसे कैसी-कैसी कड़ी बातें कहीं। उनका भी मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। अपने यज्ञ में मेरा बहिष्कार कर दिया। क्या यह उन्होंने उचित कार्य किया?"

यह सुनकर गम्भीरता के स्वर में लोक पितामह ब्रह्माजी बोले—"देखिये, विश्वनाथ! जो लोग कर्मकाण्ड को ही सब कुछ समझते हैं, जिनका चित्त भीतर से मलिन है, दूसरों के उत्कर्ष को देखकर जिनका हृदय सदा कुढ़ता रहता है, जो सदा प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित पुरुषों के छिद्रान्वेषण करते हुए उनकी निन्दा में ही तत्पर रहते हैं। जो बोलते भी हैं, तो दूसरों को अपने दुर्वचन रूपी वाणों से सदा विद्ध ही करते हैं, वे तो स्वयं ही मरे हुए हैं। थोड़े दिन उनका उत्कर्ष भले ही दिखाई दे, किन्तु फिर उनको कोई पूछता ही नहीं। वे तो अपने ईर्ष्या रूपी कुकर्म से दैव द्वारा ही मारे जाते हैं। ऐसे लोगों पर आपको क्रोध नहीं करना चाहिए। पिसे को क्या पीसना? मरे को क्या मारना? गिरे को क्या गिराना?"

शिवजी ने कहा—"प्रभो! मैंने तो पहिले कुछ किया नहीं।

उन्होंने ही बिना बात की छेड़-छाड़ आरम्भ कर दी। बिना प्रसंग के रागद्वेष आरम्भ कर दिया।"

श्री ब्रह्माजी यह सुनकर बोले—"हे वृषभध्वज! भगवान् की यह माया ही ऐसी है कि इसके चक्कर में पड़कर जीव कर्तव्या-कर्तव्य का विवेक खो बैठता है। जब बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, तो परस्पर में भेद-भाव उत्पन्न होता है। यह मेरा है, यह तेरा है, यह अपना है, यह पराया है। मैं लूँगा, तू कैसे ले सकता है? बस, इस मैं मेरी, तू तेरी में सब गुड़ गोबर हो जाता है। अज्ञ पुरुष बिना बिचारे महापुरुषों का तिरस्कार और अपमान करने लगते हैं। अपने ऐश्वर्य के मद में ऐसे भूल जाते हैं कि वे न कहने योग्य बातों को भी कह जाते हैं, न करने योग्य कार्यों को भी करने लगते हैं; किन्तु महापुरुष अपनी स्वाभाविक दयालुता के कारण उन पर कृपा ही करते हैं, उनके अपराधों को सदा क्षमा करते रहते हैं। उस दुख को दैवाहीन समझकर कभी भी अहित नहीं करते।"

शिवजी ने कहा—"तो महाराज! मैंने तो कुछ कहा नहीं। अब आप मुझे जो भी आज्ञा दें वही मैं करने को तैयार हूँ।"

शीघ्रता के साथ ब्रह्माजी ने कहा—"अब मैं आपको आज्ञा दूँ? आप स्वयं सर्वज्ञ हैं। सबके घट-घट की जानने वाले हैं। आपसे बाहर-भीतर की कोई भी बात अज्ञात नहीं। भगवान् की दुस्तर माया आपकी बुद्धि का स्पर्श भी नहीं कर सकती। आपकी और दक्ष की क्या तुलना? वह माया मोहित जीव है, आप माया से परे शिव हैं। वह कर्म-कांड को ही सब कुछ समझे बैठा है, आप नित्य ज्ञान स्वरूप हैं। उसने जो किया बुरा किया। अब उसके कर्मों का आप विचार न करें। उसकी मूर्खता की ओर न देखकर अपनी दीनबन्धुता की ओर निहारें।"

शिवजी ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज ! मेरे लिए क्या आज्ञा होती है ? मुझे आदेश दीजिये।"

ब्रह्माजी बोले--"आप बार-बार ऐसे शब्दों का प्रयोग क्यों करते हैं ? मैं आपको आदेश कैसे दे सकता हूँ ? मैं तो प्रार्थना ही कर सकता हूँ। मेरी प्रार्थना है कि यह जो यज्ञ अधूरा ही रह गया है, आपके रुद्रों के द्वारा जो विध्वंस हो गया है, वह जैसे भी हो, किसी प्रकार पूरा हो जाना चाहिये।"

शिवजी बोले—"महाराज, मैं मना थोड़े ही करता हूँ आप सबके स्वामी हैं, पूर्ण कराइये। मेरे योग्य जो सेवा हो, उसे बताइये। आप जिसे पूर्ण कराना चाहें, वह अपूर्ण-अधूरा-कैसे रह सकता है।"

ब्रह्माजी बोले--"मेरे कराने से ही यह पूर्ण थोड़े ही होगा। आपने ही बिगाड़ा है, आप ही बना सकते हैं। यह तो आपके ही द्वारा हो सकता है।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं--"विदुरजी ! शिवजी और ब्रह्माजी की ऐसी स्नेह भरी बातें सुनकर सभी को संतोष हुआ। सबने समझा शिव ने हमारे अपराधों को क्षमा कर दिया है। क्या यह अधूरा यज्ञ फिर से से पूरा हो सकेगा ? इन देवों के लिये कुछ भी असंभव नहीं, ये जो चाहें सो कर दें। यह सोचकर वे परिणाम की प्रतीक्षा उत्सुकता के साथ करने लगे कि देखें अब क्या होता है ?"

छप्पय

सुनि विधि को आगमन उठे सम्भ्रम सह श्रीहर।
अगवानी कूँ गये चरनमहँ नायो निज सिर॥
करत दण्डवत् देखि शम्भु विधि तुरत उठाये।
श्रद्धा भक्ति समेत प्रेमतें हिये लगाये॥
बोले ब्रह्मा--देव ! तुम, मकरी सम जगकूँ रचहु।
रचि पालो क्रीड़ा करहु, जब चाहो छिनमहँ हरहु॥

शिवजी द्वारा दक्ष-यज्ञ पूर्ति का आशीर्वाद

[२०९]

नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये।
देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया ॥*

(श्री० भा० ४ स्क० ७ अ० २ श्लो०)

छप्पय

यज्ञ अधूरो भयो कृपा करि दक्ष जिवाओ।
भृगु की दाढ़ी लगै देव भग नेत्र बनाओ॥
कस पूषा बिनु दाँत, खायँ कछु युक्ति बताओ।
जस जानौं तस प्रभो, जज्ञकूँ पूर्ण कराओ॥
हर हँसि बोले—यज्ञपशु, को सिर शव धड़ पै धरो।
जीवित होवे दक्ष—भृगु, दाढ़ी बकरा की करो॥

महत् पुरुषों का अपमान करने से समस्त सद्गुण नष्ट हो जाते हैं। महापुरुष तो भले ही अपराध करने वाले को क्षमा कर दें; किन्तु प्रकृति उन्हें दण्ड दिये बिना मानती नहीं। इसी-

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! ब्रह्माजी की प्रार्थना करने पर सदाशिव भोलेनाथ कहने लगे—हे चराचर प्रजा के स्वामिन्! ब्रह्मन्! मैं इन भगवान् की माया के वश हुए बालबुद्धि लोगों के अपराधों को न तो किसी से कहता ही हूँ और न उनका विचार ही करता हूँ। केवल सचेष्ट करने के निमित्त मैंने साधारण दंड दे दिया था।"

लिये सब अपराधों से बड़ा महत्पुरुषों का अपमान करना है। क्षमा हो जाने पर भी वे जग में फिर उतने उत्कर्ष को प्राप्त नहीं होते, जितने पूर्व में थे। कुछ-न-कुछ चिह्न शेष रह ही जाता है। इसलिये शक्ति भर तो महत्पुरुषों के अपमान आदि अपराधों से बचे ही रहना चाहिये, यदि भूल से हो ही जायँ, तो सर्वात्मभाव से उनकी ही शरण में जाना चाहिये।

मैत्रेय मुनि कहते हैं--"विदुरजी! जब ब्रह्माजी ने शिवजी का सौम्य स्वरूप देखा तथा उनके व्यवहार में मृदुता और मंजुलता प्रतीत हुई, तब ब्रह्माजी का स्पष्ट कहने का साहस हुआ। वे बोले—"देखिये, जो बात हुई सो जाने दीजिये। अब तो काम की बातें होनी चाहिये। इन लोगों ने मूर्खता की पराकाष्ठा कर दी है। भला बताइये—जो यज्ञ के एकमात्र अधीश्वर हैं, जिनकी कृपा से यज्ञ-याग पूर्ण होते, उन आपको ही यज्ञ भाग से वंचित कर देना-यज्ञ में आपका भाग न निकालना-कितनी बड़ी अज्ञता है!"

शिवजी बोले—"तब आप ही उपाय बतावें। यजमान तो मर गये, यज्ञ पूर्ण कौन करेगा?"

ब्रह्माजी बोले--"मारने और जिलाने वाले तो आप ही हैं, आप जिसे चाहें मार सकते हैं, जिस मरे हुए को चाहें जिला सकते हैं। मेरी प्रार्थना यही है कि मरे हुए दक्ष फिर जी उठें, भग देवता की जो आपके पार्षदों ने आँखें निकाल ली हैं, उनकी आँखों का कुछ फिर से प्रबन्ध होना चाहिये। ये भृगु मुनि बिना दाढ़ी मूँछ के रुण्ड-मुण्ड से बुरे लगते हैं। आपके गणों ने इनके साथ घोर अन्याय किया, जो बुरी तरह से इनकी दाढ़ी, मूँछें उखाड़ लीं। इनकी दाढ़ी, मूँछों का कुछ यथायोग्य प्रबन्ध होना चाहिये।"

शिवजी ने कहा--"वह तो घर की खेती है, जब चाहें फिर आ जायगी।"

ब्रह्माजी बोले--"यह तो सत्य है कि दाढ़ी फिर आ जाती है, मुड़ी हुई दाढ़ी फिर उग आती है, किन्तु आपके उद्धत पार्षदों ने तो इनको जड़ मूल से सफाचट कर दी। कुछ थोड़ी बहुत जड़ बनी रहती, तो फिर आ जाती है। मूल ही छिन्न-भिन्न हो गई, तो फिर शाखायें कैसे फूट सकती हैं। इसलिये अब फिर से उगने की आशा तो है नहीं। कोई दूसरा ही उपाय सोचना पड़ेगा। पूषा का मुँह भी पोपला हो गया है। यजमान के दिये हुए यज्ञ भाग को नहीं चबा सकते, चना-चबैना चबाने की तो चर्चा ही क्या ? पूड़ी मालपुआ भी नहीं खा सकते। इसलिये इनकी कोई व्यवस्था होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त ये जो देवता, ऋषि हैं, किन्हीं के तलवार से अङ्ग कट गये हैं, किन्हीं के पत्थरों की मार से सिर फट गये हैं, किन्हीं के जोड़ अपने-अपने स्थानों से हट गये हैं, किन्हीं के अङ्ग दूसरे से सट गये हैं। इन सबके अङ्ग पूर्ववत् हो जायँ।"

शिवजी हँसे और बोले—"महाराज ! यह सब तो हो जायँ, किन्तु हमारे भाग की भी कुछ चिन्ता है। हमारे भाग के बिना ही यज्ञ पूर्ण हो जाय क्या ?"

ब्रह्माजी शीघ्रता के साथ बोले--"भगवन् ! यह भला कैसे हो सकता है ? आपके भाग के बिना यज्ञ कैसा ? यज्ञ में आज से जो भी कुछ बचा करेगा, वह सब रुद्र का ही भाग समझा जायगा। अब जो कुछ शेष है, सब आपका ही भाग है। आपके भाग से ही यह यज्ञ अब सम्पूर्ण हो।" इतना कहकर ब्रह्माजी ने सब देवताओं से पूछा--"क्यों भाई तुम सबको यह स्वीकार है ? यदि स्वीकार हो, तो तुम सब हाथ उठा दो।" यह सुनकर समस्त देवताओं ने हाथ उठा दिये; किन्तु जिनके हाथ नहीं थे, वे क्या उठाते, उन्होंने हाथ नहीं उठाये।

शिवजी ने कहा--"अच्छी बात है जिन्होंने हाथ नहीं उठाया

है, वे इसका फल पावेंगे। सबने एक स्वर से कहा--"हमें सब स्वीकार है।"

यह सुनकर हँसते हुए शिवजी ने कहा--"हमें आज से बचा-खुचा, जूठा-कूठा ही मिला करेगा क्या ?"

हँसते हुए ब्रह्माजी बोले--"अजी, जूठा-कूठा कैसा ? बची हुई वस्तु तो गृह के स्वामी की होती है, यज्ञों के आप स्वामी हैं, इसलिये बची हुई वस्तुओं पर आपका स्वतः अधिकार है।"

शिवजी तो भोलेनाथ ही ठहरे। यह सुनते ही प्रसन्न हो गये और बोले—"अच्छी बात है, यही सही।"

तब सन्तोष के स्वर में ब्रह्माजी बोले—"एक बात और है महाराज ! अब आप इन बातों का विचार न करें। न आज से बड़ी-बड़ी सभाओं में इन पुरानी बातों को ही कहकर इन देवता पितर और ऋषिओं को लज्जित करें।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! ब्रह्माजी की ऐसी दूर-दर्शिता की प्रेम भरी बातें सुनकर हँसते हुए शिवजी बोले--देखिये, महाराज ! मैं यह सब जानता हूँ कि ये जीव माया मोहित हैं। अपने स्वभावानुसार प्रकृतिवश होकर बर्ताव कर रहें हैं। ऐसे मूढ़ों की बातों पर न मैं ध्यान देता हूँ, न उनकी चिन्ता ही करता हूँ, फिर सभी समारोहों में उनका कथन करना तो दूर की बात रही।"

इस पर हँसकर ब्रह्माजी ने कहा—"तब, फिर यह इतना बखेड़ा क्यों किया ? अपने पार्षदों द्वारा यज्ञ विध्वंस क्यों कराया ?"

शिवजी कहा--"देखिये महाराज ! आप सब लोग मुझे पशुपति कहते हैं। पशुपाल एक दण्ड लिये पशुओं के पीछे-पीछे घूमता रहता हैं। सब पशु उसी के हैं, उसे किसी पशु से द्वेष नहीं, बैर नहीं। फिर भी जो पशु उच्छृङ्खलता करता है, दूसरों के

खेत को खाता है, उसको पशुपाल दो दण्डे जमा देता है। जिससे फिर वह ऐसा अपराध न करे। इसी प्रकार मैंने सावधान करने के लिये थोड़ी-सी मरम्मत करा दी थी।"

ब्रह्माजी बोले--"अच्छी बात है, आप सर्वसमर्थ हैं, जो कुछ आपने किया, ठीक ही किया। अब इन बातों को छोड़िये। काम की बातें कीजिये। हाँ, तो दक्ष को जिलाने की क्या सोची ?"

शिवजी को कुछ विनोद सूझा। विनोदी तो वे प्रथम श्रेणी के ही हैं। अपनी हँसी को भीतर ही रोककर बोले--"देखिये, दक्ष का सिर तो इन उद्धतों ने काटकर अग्नि में जला दिया। अब एक काम करो, बकरे का सिर काटकर उनके धड़ पर जमा दो, जो जीकर उठते ही बकरे की-सी बोली बोलें, तो मुझे वह प्रिय लगेगी, क्योंकि गाल बजाने से मैं प्रसन्न होता हूँ।"

"ब्रह्माजी ने कहा--"अच्छा महाराज ! डण्डौत ! आप कैसे भी कहें, आपके वचन तो सत्य ही होकर रहेंगे। बकरे ही का सिर सही। बेचारा किसी तरह जीवित हो जाय। भग देवता के नेत्रों की क्या व्यवस्था होगी ? यज्ञों में ये अपना भाग कैसे देखा करेंगे ? हाथ से टटोलेंगे, तो ऐसा न हो, किसी दूसरे के ही भाग को चट कर जायँ। लड़ाई-झगड़ा हो जाय !"

शिवजी कोले--"महाराज ! इनकी आँखें गईं सो गईं। ये मित्र देवता की आँखों से देखा करेंगे। देवता इनका हाथ पकड़े रहें, दोनों उन्हीं नेत्रों से काम चलालें। आधे-साझे का हिसाब-किताब रहे।"

ब्रह्माजी हँसे। यह अच्छा जोड़ा बना दिया। स्त्री पुरुषों का जोड़ा होने से तो स्त्री को अर्धाङ्गिनी अब तक लोग कहा करते थे, किन्तु पुरुषों का जोड़ा शिवजी ने नया ही रचा। हँसकर बोले—"अच्छी बात है, महाराज यही सही। अब इन पूषा देवता के दाँतों की क्या व्यवस्था है ?"

शिवजी शीघ्रता के साथ बोले—"इनको दाँतों-फाँतों की अब क्या आवश्यकता ? ये आज से पिसा हुआ सत्तू आदि अन्न दनादन उड़ावें। यजमान के दाँतों से काम चलावें।"

ब्रह्माजी ने कहा—"महाराज ! पिसा ही हुआ खाना है, तो फिर यजमान के दाँतों की क्या आवश्यकता ? उसे तो ये अपने पोपले मुख से स्वतः ही निगल जायेंगे। अच्छी बात है आज से ये पिष्टभुक हुए। इनका भाग पीसकर पृथक् पत्तल पर रखा जाया करेगा। अब इन अङ्ग-भङ्ग देवताओं की क्या व्यवस्था करते हैं ?"

शिवजी बोले--"ये सब अभी मेरे आशीर्वाद से, फिर ज्यों-के-त्यों स्वस्थ और निरोग हो जायँ, इन्हें कोई भी व्याधि न रहें, क्योंकि इन सब ने प्रसन्नता पूर्वक मेरे यज्ञ भाग का समर्थन किया है।"

ब्रह्माजी बोले—"जिनकी भुजायें कट गई हैं, उनके लिये क्या व्यवस्था होगी ?"

शिवजी बोले—"ये वैद्यराज अश्वनीकुमार इनकी बाहों को जोड़ देंगे ये सब उनकी बनाई बाहों से काम लें।"

ब्रह्माजी बोले--"जिनके हाथ कट गये हैं, वे कैसे काम करें ?"

शिवजी बोले--वे सब पूषा के हाथ से काम लें। अब तो किसी भाँति काम निकलना ही है। दक्ष यज्ञ की कुछ स्मृति भी तो रहनी ही चाहिये।"

ब्रह्माजी बोले--"अच्छा, महाराज ! अब ये बिचारे भृगुजी बड़ी देर से टकटकी लगाये निहार रहे हैं। मुझे तो इनकी दाढ़ी की ही सबसे अधिक चिन्ता है। इसकी आप क्या व्यवस्था करते हैं ?"

अपनी हँसी को भीतर-ही-भीतर रोककर शिवजी बोले—

"इनके बकरे की दढ़ी लगा दो। इकहरे बदन पर बड़ी सुन्दर फबेगी। इसके अतिरिक्त कोई उपाय भी नहीं, क्योंकि भूत, प्रेत पिशाचों ने इनकी दाढ़ी को उखाड़कर उसी समय अग्नि में स्वाहा कर दिया था।"

ब्रह्माजी ने कहा--"आप सर्व समर्थ हैं, महाराज! जिसे चाहें जो बना दें। यही सही, अब कृपा करके आप यज्ञ में पधारें और विधि-पूर्वक उसे फिर से सम्पूर्ण करा दें। आपने जो व्यवस्था बना दी है, वह तो यथावत् होगी ही। सब देवताओं की ओर देखकर ब्रह्माजी बोले--"क्यों भाई! तुम्हें ये सब बातें स्वीकार हैं न?"

सबने एक स्वर से कहा—"साधु! साधु!! सुन्दर हैं, बहुत अच्छा है। दक्ष-यज्ञ का पुनरुद्धार होना ही चाहिये।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं--"विदुरजी! इस प्रकार व्यवस्था करके ब्रह्माजी ने शिवजी से कहा—"तब महाराज, आपको भी अब यज्ञ में चलना पड़ेगा। आपके ही तत्त्वावधान में अब यज्ञ होगा।"

ब्रह्माजी की यह बात सदा शिव भोलेनाथ ने स्वीकार की और वे सबके साथ दक्ष-यज्ञ में चलने के लिये उद्यत हुए।

छप्पय

मित्र नेत्र तें निरखि भाग भग अपनों पावें।
पूषा सत्तू पिसे पोपले मुखतें खावें॥
अध्वर्यू निज काज अश्विनी करतें लेवें।
टूटे जिनके हाथ सभी पूषा कर जेवें॥
छिन्न भिन्न जिनके भये, अङ्ग नये फिरितें लगें।
जाओ, सबके दुख दुरित, देखत देखत ही भगें॥

दक्ष-यज्ञ का पुनरुद्धार

[२१०]

ततो मीढ्वांसमामन्त्र्य सुनासीराः सहर्षिभिः ।
भूयस्तद् देवयजनं समीढ्वद्वेधसो ययुः ॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, ७ अ०, ७ श्लोक)

छप्पय

साधु, साधु, सब कहें शम्भु की करें बड़ाई ।
बोले ब्रह्मा—"विभो ! बिगारी बात बनाई ॥
अब चलिकें सब साज सत्र के शीघ्र सजाओ ।
फिरतें रोपो ठाट यज्ञ कूँ सफल बनाओ ॥
विधि आयसु सिर धारि शिव, सब कूँ सँग लै चलि दये ।
बकरा सिर धर पै धरयो, तुरत दक्ष जीवित भये ॥

अहंकारी के हृदय में हेकड़ी तभी तक रहती है, जब तक उसका अहंकार चूर नहीं होता। किसी भी कारण से, दैवी प्रकोप से जब उसका ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है, तब उसे चेत होता है। अरे, मैंने अहंकार के वशीभूत होकर कैसे-कैसे कुकर्म किये, सज्जन पुरुषों के प्रति न कहने योग्य वचन कहे। जब

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! सब ऋषियों के सहित देवताओं ने शम्भु को दक्ष यज्ञ में पधारने को आमन्त्रित किया। तब सब लोग लोकपितामह ब्रह्माजी तथा शिवजी को साथ लिये हुए उसी यज्ञ मण्डप में गये।"

पश्चात्ताप हृदय में होता है, तो अन्तःकरण का मल धुल जाता है। पश्चात्ताप ऐसा मलहारी पदार्थ है कि वह तुरन्त मलिन हृदय को धोकर स्वच्छ बना देता है, किन्तु वह बनावटी न हो, आन्तरिक हो। ऐसा प्रायः बहुत देखा गया है, जब मनुष्य धनी होता है, तब अपने सामने किसी को कुछ समझता नहीं। धन के मद में ऐसा मत्त हो जाता है कि वह पूजनीय पुरुषों का भी अपमान करने लगता है। जब उसका धन ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है, पग-पग पर उसे ठोकर लगती हैं, तो उसकी बुद्धि ठिकाने आ जाती है। दक्ष के यज्ञ विध्वंस होने के पश्चात् उसे भी चेत हुआ, अब उसे भगवान् वृषभध्वज का महत्व मालूम हुआ। अब उसे उनकी ईश्वरता का बोध हुआ। जीव माया मोहित होकर न जाने क्या-क्या अनर्थ करता रहता है, किन्तु शिवजी तो सबके माता-पिता तथा सर्वस्व हैं, वे करुणा के सागर हैं, सबको क्षमा करते हैं। वे क्षमा न करें, तो जीव कहाँ जायँ। उनका तो कभी उद्धार ही न हो, माता अपने अबोध बालक के अपराधों की ओर ध्यान दे, तो बच्चा एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता। माँ की गोदी में मल-मूत्र त्याग देता है, सोते समय उसके बिछौने को भिगो देता है, पैर लगा देता है, रोता है, चिल्लाता है, रूठता है, हठ करता है, काम नहीं करने देता। फिर भी माँ सब सहती हैं और उसके मुँह को चूमकर, स्तनों का दूध पिलाकर, उसका लालन-पालन करती है। दयावश नहीं, अपने स्वभाववश ऐसा करने में उसे सुख मिलता है। शिवजी भी जीवों की सब सहते हैं और उन्हें डरा धमकाकर कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग पर लाते हैं। कुपथगामी को सुपथ पर डालते हैं। तभी तो वे विश्वनाथ कहलाते हैं।

मैत्रेय मुनि कहते हैं--"विदुरजी! जब ब्रह्मादिक देवों ने ऋषि मुनि तथा पितरों ने भगवान् सतीपति से दक्ष-यज्ञ में पधा-

रने की प्रार्थना की तो वे अपना दण्ड कमण्डलु उठाकर तत्क्षण चलने को उद्यत हो गये। उनके मन में कोई राग द्वेष वाली बात तो थी ही नहीं। वे तो निश्छल निष्कपट थे, ब्रह्माजी को साथ लिए हुए वे सबके आगे-आगे चल दिये।"

इस प्रकार विदुरजी! सब देवों और विप्रों के सहित ब्रह्मा जी और महेश कनखल में दक्ष के उजड़े हुए यज्ञ में आये। यज्ञ मण्डप जला हुआ पड़ा था, पात्र इधर-उधर टूटे पड़े थे। वेदियाँ उखड़ी हुईं, जली हुईं, काली-काली दिखायी देती थीं। कटे हुए दक्ष का धड़ पड़ा था। सेवक इधर-उधर अन्यमस्क भाव से रक्षा कर रहे थे। स्त्रियाँ रो रही थीं, यज्ञ भूमि स्मशान के तुल्य दिखाई देती थी। शिवजी की आज्ञा से तुरन्त वहाँ का मल हटाया गया। हजारों मनुष्य कार्यों में जुट गये। यज्ञ भूमि फिर से लीपी पोती और धोई गयी। नये मण्डप तैयार हुए। नई सामग्री मँगाई गई। शिवजी के पधारते ही, वहाँ फिर से ब्राह्मी श्री विराजमान हुई। आठों सिद्धियाँ नवों निद्धियाँ स्वयं आकर वहाँ कार्य करने लगीं, सभी सामग्रियों को श्रद्धा सहित जुटाने लगीं, ब्राह्मणों में पुनः उसी भाँति उत्साह छा गया। चारों ओर चहल-पहल होने लगी। जब सामग्री जुट गयी, चारों ओर कूड़ा करकट हटाकर सफाई हो गयी, तो वेदज्ञ ब्राह्मणों ने बकरे का सिर लेकर दक्ष के धड़ पर धरा। शिवजी के निहारते ही दक्ष उसी प्रकार उठकर खड़े हो गये, जैसे कोई सोता हुआ पुरुष निद्रा त्यागकर खड़ा हो जाता है। ज्योंही दक्ष ने चारों ओर दृष्टि घुमाई कि सामने सौम्य मूर्ति भगवान् शिवजी उसे दिखाई दिये। पहले उसका हृदय शिव द्रोह रूपी कालिख से कलुषित हो गया था, अब शिवजी की संजीवनी रूपी दृष्टि से उसके सभी पाप धुल गये। उसका हृदय उसी प्रकार स्वच्छ हो गया, जिस प्रकार खटाई से ताँबे का पात्र स्वच्छ हो जाता है—अथवा धूलि से भरा दर्पण

कपड़े से पोंछ देने से स्वच्छ हो जाता है, अथवा मैला शीशा चूने से मलकर धोने से चमकने लगता है, अथवा मलिन वस्त्र सुन्दर साबुन से धोने से उज्जवल हो जाता है, अथवा जङ्ग लगे शस्त्र बालू और चिकनाई पाकर नये से बन जाते हैं, शरद्ऋतु के आने से जैसे नदियों का जल निर्मल हो जाता है, अथवा रीठा के योग से मैला ऊनी वस्त्र स्वच्छ हो जाता है।

हृदय निर्मल होने से दक्ष की इच्छा शिवजी की स्तुति करने की हुई। ज्यों ही उन्होंने 'सतीपति' यह शब्द का उच्चारण किया, त्यों ही उन्हें अपनी प्यारी पुत्री सती का स्मरण हो आया। स्मरण आते ही उनका कण्ठ रुद्ध हो गया, आँखों में आँसू आ गये, शरीर रोमाञ्चित हो गया, प्रयत्न करने पर भी वह कुछ न कह सके, एक शब्द भी उच्चारण करने में वे समर्थ न हुए।

उनकी ऐसी प्रेम दशा देखकर दयासागर शिवजी ने उनके ऊपर दया की दृष्टि डाली। कृपापूर्वक उनकी ओर निहारा। शिव कृपा को प्राप्त करके प्रेम में विह्वल हुए दक्ष ने जिस किसी भाँति अपने को सम्हाला और बिना छल-कपट के सरलता के साथ वे सदाशिव की स्तुति करने के लिये उद्यत हुए।

दक्ष ने कहा—"प्रभो! मुझे आशा नहीं थी कि आप मेरे इतने गुरुतर अपराध को भी इतनी सरलता के साथ शीघ्र ही क्षमा कर देंगे। आपने जो मुझे अपराध के लिये दण्ड दिया, यह आपने मेरे ऊपर कृपा ही की। मेरे पाप का नाश कर दिया, मेरे मन की मलिनता को धो दिया। यह आपने कोई विचित्र बात नहीं की। आपका विरद ही यह है। श्रीहरि और आप दोनों अधर्म नीच और नाममात्र के ब्राह्मणों की भी उपेक्षा नहीं करते, फिर मैं तो किसी-न-किसी प्रकार प्रेम से या द्वेष से आपका आराधन ही कर रहा था।"

शिवजी हँस पड़े और बोले—"ससुरजी! मेरे पार्षदों ने जो

मेरी आज्ञा ही से आये थे, आपके साथ बहुत अनुचित बर्ताव किया। आपको आवश्यकता से अधिक दण्ड दिया गया।"

दक्ष बोले—"नहीं प्रभो! जो कुछ हुआ, मेरे कल्याण के ही निमित्त हुआ। इससे मुझे लाभ ही हुआ। मेरा मलिन अन्तःकरण पवित्र हो गया। आप दंड द्वेषवश थोड़े ही देते हैं। आपही सबके जनक और रक्षक हैं। आपने ही विद्या, तप और व्रतों को धारण करने वाले ब्राह्मणों को, वेद और आत्मतत्त्व की रक्षा के निमित्त, पहले उत्पन्न किया है और आपही दण्ड लेकर उनकी उसी प्रकार सदा रक्षा करते रहते हैं, जैसे, ग्वाला पशुओं की रक्षा करता है। मैंने तो ऐसा अपराध किया था कि कोटि कल्प तक नरकों की अग्नि में पचते रहने पर भी मेरा उससे उद्धार नहीं हो सकता था, किन्तु आपने अपनी अहैतुकी कृपा से मुझे उस अपराध से सहज में ही छुड़ा दिया। मेरे दुःसह अपराधों को भी शान्ति के साथ सहा। प्रजापतियों के यज्ञ में मैंने न कहने योग्य बातें आप से कहीं, किन्तु आप अपनी उदारतावश मेरे अपराधों की उपेक्षा ही करते रहे, उनकी ओर आपने ध्यान ही नहीं दिया। सो हे वरद! हे करुणा-सागर! हे दीन-वत्सल! आप मेरे कृत्यों की ओर ध्यान न दें, अपनी स्वाभाविक सहज कृपा के ही कारण मुझ पर प्रसन्न हों, मेरी रक्षा करें, मुझे घोर नरकादिकों से बचावें।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! इस प्रकार शुद्ध चित्त से और अत्यंत विनीत भाव से जब दक्ष ने भगवान् भुवनेश्वर शम्भु की प्रार्थना की, तो उन्होंने दक्ष के प्रति अपनी प्रसन्नता प्रकट की। शिवजी की प्रसन्नता प्राप्त करके अब प्रजापति दक्ष अपने अधूरे यज्ञ को पूर्ण करने का उपक्रम करने लगे।"

छप्पय

निरखे सम्मुख शम्भु दक्ष हिय स्वच्छ भयो अति।
रुद्र-द्रोह को मैल धुल्यो वर विमल भई मति॥
सती सुता की यादि प्रजापति कूँ ह्वै आई।
बानी गद्गद भई प्रेम में सुधि बिसराई॥
जैसे-तैसे रोकि मन, बहु विधि शिव विनती करी।
दई सान्त्वना विविध विधि, ससुर लाज शिव ने हरी॥

दक्ष-यज्ञ में भगवान् विष्णु का प्रकट होना

(२११)

अध्वर्युणाऽऽत्तहविषा यजमानो विशाम्पते।
धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः॥
तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयन्त्या दिशो दश।
मुष्णंस्तेज उपानीतस्तार्क्ष्येण स्तोत्रवाजिना॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, ७ अ०, १८, १९ श्लोक)

छप्पय

विधि हर आज्ञा पाइ यज्ञ आरम्भ करचो फिरि।
ऋत्विक् होता, सभ्य कुण्ड चहुँ ओर रहे घिरि॥
भूत प्रेत संसर्ग जनित सब मेटि मलिनता।
पुरोडास हरि अरपि करी सब विधि पावनता॥
पुरोडास हवि हाथ लै, ज्यों ही दक्ष ठढ़े भये।
ध्यान करत अखिलेश हरि, त्यों ही परगट ह्वै गये॥

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! हाथ में हवि लिये हुए अध्वर्यु के साथ यजमान दक्ष ने ज्यों ही विशुद्धि बुद्धि से ध्यान किया, त्यों ही श्री हरि उस यज्ञ-स्थान से प्रकट हुए। भगवान् अपनी प्रभा से दशों दिशाओं को देदीप्यमान कर रहे थे। उनके महान् तेज से सभा में बैठे सभी सभासदों की दृष्टि चकाचौंध हो गई। भगवान् उन गरुड़जी पर स्थित थे, जिनके पङ्खों से वेद मन्त्र निकल रहे थे।"

तीनों देव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—एक ही हैं, इनमें जो भेद दृष्टि करता है, वह नरक का अधिकारी होता है। जैसे एक मनुष्य है, जब वह व्यापार करता है, उसे व्यापारी कहते हैं, यात्रा करते समय सब उसे यात्री के नाम से पुकारते हैं, विवाह करने जाता है, उसे दूल्हा कहते हैं, मत देने जाता है, तो मतदाता कहलाता है, न्याय करने जाता है तो न्यायाधीश कहकर सब उसका सम्मान करते हैं, किसी सभा का सभापति बनकर जाता है, तो सभी वक्ता श्रोता सभापति कहकर उसको सम्बोधित करते हैं; इसी प्रकार जब श्रीहरि सृष्टि करते हैं, तो वे ब्रह्मा, पालन करते समय विष्णु और संहार के समय वे ही रुद्र कहलाते हैं। भेद भाव करके जो इन तीनों देवों में भेद स्थापित करते हैं, उनकी दक्ष की-सी दशा होती है। फिर भी भगवान् अपने भक्त का पराभव नहीं देख सकते। भक्त यदि भूल कर बैठता है, तो उसे जिस किसी प्रकार दण्ड आदि देकर सत्पथ पर ले आते हैं।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! दक्ष के यज्ञ को भूत-प्रेत पिशाच आदि रुद्रगणों ने विध्वंस ही नहीं किया, किन्तु उसे मल मूत्र त्याग करके भ्रष्ट भी कर दिया था, अतः सर्वप्रथम उस यज्ञ की शुद्धि आवश्यक थी। झाड़ू, बुहारू, मार्जन, उपलेप आदि करके ब्राह्मणों ने सर्वप्रथम मन्त्रों से शुद्धि की, फिर उपाध्याय, ऋत्विक्, सदस्य, होता आदि सभी ने मिलकर अग्न्याधान करके यज्ञ कार्य आरम्भ किया। भूत प्रेतों की संसर्ग शुद्धि के निमित्त विष्णु सम्बन्ध त्रिकपाल पुरोडास—शुद्ध चित्त से अनेक वेदज्ञ ब्राह्मणों के सहित—दक्ष प्रजापति ने अर्पण किया। अग्नि में श्रीविष्णु के निमित्त हवि अर्पण करते ही यज्ञ रूप जनार्दन भगवान् विष्णु उसी समय वहाँ प्रकट हो गये।

आज भगवान् का तेज अत्यन्त ही दर्शनीय था। साधारण लोग तो उस तेज को सहन करने में समर्थ ही न हो सके।

भगवान् के प्रकट होते ही दशों दिशायें देदीप्यमान हो उठीं। भगवान् की वस्त्राभूषणों की चमक-दमक से सभी के चक्षुओं के सम्मुख चकाचौंध-सा छा गया। सभी उनके महान् तेज से सम्मुख हतप्रभ हो गये। भगवान् का इतना तेज था कि कोई उनकी ओर देख भी नहीं सकता था। वे वनितानन्दन गरुड़ की पीठ पर विराजमान थे, जिनके उड़ने पर जिनकी पङ्खों से सदा सामवेद की ऋचाओं का उच्चारण होता रहता है, जो सब पक्षियों में श्रेष्ठ हैं, जो पङ्ख वाले खगों के राजा हैं, जिन्होंने युद्ध करके भगवान् विष्णु तक को सन्तुष्ट किया है, जो अपने पराक्रम से इन्द्र आदि देवों से युद्ध करके, बलपूर्व स्वर्ग से अमृत उठा लाये थे। उन गरुड़ के ऊपर कसे हुए मणि जटित सिंहासन पर श्रीहरि विराजमान थे। सिंहासन में लगे अमूल्य मणि-माणिक्य आकाश में असंख्यों सूर्य, चन्द्र के समान चमक रहे थे। पङ्ख फैलाये गरुड़-जी टेढ़े तिरछे होकर अपनी उड़ान की कलायें दिखाते हुए उतर रहे थे। सबके देखते-देखते भगवान् उसी स्थान पर आकर विराजमान हुए जहाँ पहिले से शिवजी और ब्रह्माजी विराजमान थे। सहसा सबने उठकर श्रीहरि को स्थान दिया। उस समय भगवान् की शोभा अवर्णनीय थी। शेष शारदा भी उस शोभा के वर्णन करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं।

स्वयं तो भगवान् का श्रीअङ्ग नवीन जल भरे मेघों के समान, वर्षा कालीन हरी-हरी घनी दूर्वा के समान, मयूर के कण्ठ के समान, अलसी के पुष्प के समान, शरद्कालीन कालिन्दी के समान श्याम वर्ण का था। उसके ऊपर सुवर्ण वर्ण का पीताम्बर उसी प्रकार शोभा दे रहा था, मानों नव जलधर रूपी प्रियतम को चपला, चञ्चला विद्युत् रूपा नायिका कसकर आलिङ्गन किये हो। पीताम्बर के ऊपर सुवर्ण की करधनी उसी प्रकार शोभा दे रही थी, मानों पीत वस्त्र से ढका श्रीहस्त लक्ष्मीजी के कटि प्रदेश

की शोभा बढ़ा रहा हो। नाना रत्नों से विभूषित मणिमय मुकुट उसी प्रकार दमक रहा था, मानों रत्नों से मण्डित सुमेरु का कोई सुन्दर शिखर अपनी आभा बखेरकर झलमल-झलमल कर रहा हो। उनका विश्व-विमोहक, भक्तों का सर्वस्व, ब्रज वधूटियों के हृदयों में काम सन्ताप को उत्पन्न करने वाला, शरद्कालीन कमल के समान खिला हुआ, श्रीमुख उसी प्रकार शोभित हो रहा था; मानों हिमालय के शिखर पर स्वच्छ पुष्करणी में एक ही सहस्र दल कमल खिल रहा हो। उसके ऊपर बिथुरी हुई कारी-कारी, प्यारी, सटकारी, टेढ़ी-मेंढ़ी लटकती हुई लटें उसी प्रकार शोभित हो रही थीं, मानों कमलकोष के ऊपर भ्रमरों की पंक्तियाँ पङ्ख फैलाये मड़रा रही हों। उनके कमनीय कानों में हिलते हुए कुण्डल उसी प्रकार शोभित हो रहे थे, जिस प्रकार चन्द्रमा के दोनों ओर पुनर्वसु नक्षत्र शोभा देते हैं। आज भगवान् ने द्विभुज रूप में प्रकट हुए न चतुर्भुज रूप में; आज वे अष्ट भुजाओं को धारण किये हुए थे। उन आठ भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, धनुष, बाण, खड्ग और ढाल धारण किये हुए थे। आठों आयुधों से मण्डित वृहद् भुजाएँ उसी प्रकार शोभित हो रही थीं, मानों पर्वत शिखर पर आठ फूले हुए वृक्ष शोभा पा रहे हों। सुपुष्पित कन्नेर वृक्ष के समान वे उन आयुधों से लदे हुए दिखाई देते थे। हृदय में श्रीवत्स का लांछन था, जिस पर लक्ष्मीजी अपनी चञ्चलता को प्रदर्शित करती हुई इठला रही थीं, उन्हीं के श्रीमुख को एकटक भाव से निहार रहीं थीं। वनमाला उनके नील-वर्ण के वक्षःस्थल में उसी प्रकार दिखाई देती थीं, मानों आकाश में एक साथ दो इन्द्र धनुष उगे हुए हों। भगवान् हँस रहे थे। हँस क्यों रहे थे जी? हँस क्या रहे थे, अपनी आभा से; कमनीय कटाक्षों से विश्व को विमोहित कर रहे थे, सबको रिझा रहे थे, भुलावा दे रहे थे। उनका उदार हास जगत्

को आनन्दित करने वाला है। आस-पास में चँवर लिये उनके नन्द सुनन्द आदि पार्षद-गण उसी प्रकार शोभा दे रहे थे, मानों मणिमय उच्च शिखर के समीपस्थ लघु शिखरों के ऊपर पङ्ख फैलाये राज हंस उड़ रहे हों। भगवान् के ऊपर श्वेत छत्र तना हुआ था, वह ऐसा लगता था, मानों शरद्कालीन स्वच्छ आकाश में पूर्ण चन्द्र छिटक रहा हो। मोतियों की चारों ओर लगी हुई झालर आस-पास टिमटिमाते उडगनों के समान हिल रही थी। वे अपने दोनों चरणों को नीचे लटकाये हुए थे, उनके दशों नखों से जो प्रभा निकल रही थी, वह ऐसी लगती थी, मानों दशों दिशाओं के ताप सन्ताप को मिटाने के लिये दस चन्द्र एक साथ दो नील कमल की पंखुड़ियों से उदित हो गये हों।

भगवान् इतने शीघ्र प्रकट हो जायँगे, इस बात की किसी को सम्भावना भी नहीं थी। सहसा भगवान् के प्रादुर्भाव से सभी विस्मित से हो गये। सब हक्के-बक्के से होकर उनके रूप लावण्य को निहारते-के निहारते ही रह गये। वे स्तुति करना चाहते थे, किन्तु कंठ गद्गद हो जाने से स्तुति न कर सके। सब किंकर्तव्य विमूढ़ से बन गये। उन्हें पता ही न रहा कि अब क्या करना चाहिये, कैसे भगवान् की पूजा स्तुति करनी चाहिये।

कुछ काल के पश्चात् धैर्य धारण करके अपने को सम्हालकर प्रजापति दक्ष उठे। उन्होंने फिर से प्रभु के पाद-पद्मों में प्रणाम किया और गद्गद वाणी से अश्रु बहाते हुए स्तुति करने को उद्यत हुए। वे रुक-रुककर बोले—"हे प्रभो! आप सभी विकारों से रहित हैं, माया से परे हैं, सृष्टि के सभी कार्यों से उदासीन हैं, निरञ्जन और निराकार हैं, तो भी खिलवाड़ के लिये, लीला करने के लिये, विनोदवश जीवों के समान चेष्टा करते हुए-से दिखाई देते हैं।"

दक्ष को स्तुति करते देखकर, अब तो सबको साहस हुआ।

यज्ञ के जितने ऋत्विक् थे, वे हाथ जोड़े हुए भगवान् के सम्मुख आये और विनीत वचनों से सिर झुकाये हुए बोले—"प्रभो ! आप साकार हैं या निराकार, हमें इस बात का कुछ पता नहीं। उपनिषदों में आपके तत्त्व का निरूपण किया गया है, किन्तु हमें तो प्रजापतियों के सत्र में इन शिवजी के प्रधान पार्षद श्रीनन्दीश्वर ने शाप दे दिया है कि तुम सब तत्त्व से हीन होकर कर्मकाण्ड में ही फँसे रहो। इसलिये महाराज ! हम तो इसी में सदा फँसे रहते हैं, इस मन्त्र का यह ऋषि है, यह देवता है, इस कार्य में इसका विनियोग होता है, यह अमुक छन्द है। अमुक छन्द में इतने अक्षर होते हैं। यह स्वर दीर्घ उच्चारण किया जाता है, यह ह्रस्व है, यह प्लुत है। हम तो 'यज्ञ' को ही आपका स्वरूप समझते हैं। यज्ञ रूप से ही आपका यजन पूजन करते हैं। ऋक्, यजु, साम और अथर्व इन चारों वेदों में हम तो आपको इसी रूप में देखते हैं। सर्वत्र यज्ञ रूप से ही आपकी स्तुति पाते हैं। अतः हम यज्ञ स्वरूप आपको नमस्कार करते हैं।"

ऋत्विजों की स्तुति सुनकर जो वहाँ सदस्य बैठे थे, उनमें बहुत से भक्ति मार्ग के थे, बहुत से ज्ञान-मार्गी और बहुत से कर्म-काण्डी। इसलिये सबने एक गोल-मोल ही स्तुति की वे सब बोले—"प्रभो ! यह संसार क्या है, एक गहन वन का बीहड़ मार्ग है। जैसे ऊबड़-खाबड़ मार्ग में जाने से अत्यन्त दुःख होता है, उसी प्रकार इस संसार रूपी मार्ग में नाना प्रकार के क्लेश भरे पड़े हैं, इनके कारण मार्ग अति दुर्गम है। ऐसे घने मार्गों में फन उठाये विषधर सर्प बैठे रहते हैं, सो काल रूपी सर्प इस संसार रूपी मार्ग में घात लगाये बैठा रहता है कि कब समय आवे और कब इसे मैं डस लूँ। ऐसे दुर्गम मार्ग में बड़े-बड़े गड्ढे होते हैं, सो सुख-दुःख, राग-द्वेष, हर्ष-शोक, हानि लाभ, यश-अपयश आदि-आदि जो द्वन्द्व हैं, ये ही बड़े-बड़े गड्ढे इस भव-पथ में हैं।

ऐसे मार्गों में सिंह, व्याघ्र, भालु आदि हिंसक जन्तु बैठे रहते हैं, सो ये अकारण निन्दा करने वाले, बिना बात द्वेष करने वाले, दूसरों की सम्पत्ति को देखकर जलने वाले, अपने पड़ोसियों के उत्कर्ष को न सहने वाले, पग-पग पर अपमानित करने वाले खल लोग ही हिंसक जन्तुओं के समान हैं। ऐसे घीहड़ वन के मार्गों में कभी-कभी बाँसों की रगड़ से दावानल लग जाती है, सो इस संसार मार्ग में शोक रूपी दावाग्नि सदा धधकती रहती है। नित्य नये-नये क्लेश, नित्य नूतन सन्ताप, हृदय को अहर्निशि जलाते रहते हैं। ऐसे मार्ग में भी धन के लोभी व्यापारी अपने प्राणों को हथेली पर रखकर लाभ की इच्छा से जाते हैं, काल का कुछ भी भय न करके वे लोभ वश इधर-उधर दौड़ते हैं। अपने यथार्थ गृह को छोड़कर मरने के लिये वनों में भटकते रहते हैं। हे स्वामिन्! जीव मात्र का गन्तव्य स्थान आपके चरणारविन्द ही हैं। निराश्रित जीवों के एक मात्र आश्रय, ये अरुण वरण के पादारविन्द ही हैं। कामनाओं के वशीभूत हुए ये जीव, मृग-तृष्णा के भ्रम में फँसे हुए बालू को पानी समझकर दौड़ने वाले ये मृग रूपी जन्तु; पिपासा रूपी ममता का बोझ सिर पर लादे, अत्यन्त दुखी हुए, कब आपकी ओर आवेंगे? कब आपको अपना सर्वस्व समझेंगे, कब ये अपने यथार्थ गन्तव्य स्थानों को पहुँचेंगे?"

यह सुनकर भगवान् रुद्र बोले—"देखिये, महाराज! आप सभी वरदाताओं में श्रेष्ठ हैं। मैं तो संसार में आपके चरणारविन्दों को ही सारातिसार समझकर सदा उनकी ही आराधना में लगा रहता हूँ। इस पर भी अज्ञानी लोग मुझे आचार भ्रष्ट, अशुचि अघोरी कहते हैं, तो मैं क्या करूँ? वे कहते हैं, तो कहते रहें। मुझे तो आपके चरणारविन्दों के ध्यान रूपी मकरन्द का

स्वाद मिल गया है, मैं तो सदा उसी में निमग्न रहता हूँ। बकने वाले बकते रहें, मैं उधर ध्यान ही नहीं देता।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! शिवजी की ऐसी स्पष्ट युक्तियुक्त प्रार्थना सुनकर सभी को हृदय की बातें कहने का साहस हुआ। अब ब्रह्माजी, भृगु मुनि आदि सभी स्तुति करने के लिये क्रमशः उठने लगे।"

छप्पय

निरखि भये सब मग्न उठे शिव सुरनि सहित विधि।
नव जलधर सम बरन हरन दुख दुरित दयानिधि॥
कीट मुकुट अति सुघर पीतवर वसन विराजें।
श्वेत छत्र अरु चँवर गले वनमाला भ्राजें॥
शङ्ख, चक्र, असि, गदा, सर, ढाल, पद्म, सारंग धनु।
अष्टबाहु आयुध लसैं, गिरि फूली कन्नेर जनु॥

दक्ष-यज्ञ में सबके द्वारा भगवान् की स्तुति

[२१२]

स प्रसीद त्वमस्माकमाकङ्क्षतां
दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ।
कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते
यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, ७ अ०, ४७ श्लोक)

छप्पय

इस्तुति प्रभु की करैं दक्ष, ऋत्विक् विद्याधर ।
लोकपाल, सुर, इन्द्र, सिद्ध, ऋषि, मुनि, योगेश्वर ॥
यजमानी अरु अग्नि, यज्ञ, गन्धर्व, विप्रगन ।
विविध भाँति करि विनय, लगायौ हरि चरननि मन ॥
सबकी सुन्दर सुनि विनय, अति प्रसन्न श्रीहरि भये ।
जैसी जाकी कामना, तैसे ताकूँ बर दये ।

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—विदुरजी ! सबकी स्तुति करने के अनन्तर ब्राह्मणों ने सारभूत स्तुति करते हुए कहा—"हे यज्ञों के अधिपति ! मनुष्यों द्वारा आपके नामों का संकीर्तन किये जाने पर यज्ञ सम्बन्धी सभी विघ्न नाश हो जाते हैं । यह हमारा यज्ञ रूप सत्कर्म नाश को ही प्राप्त हो गया था, इसलिये हम आपके दर्शनों को लालायित थे । आपने दर्शन दिये अब आप हम पर प्रसन्न हूजिये, आपके चरणों में पुनः-पुनः प्रणाम है ।"

संसार में वे लोग धन्य हैं, जिन्हें भगवान् का साक्षात्कार हुआ है। वे नेत्र सफल हैं, जिन्होंने श्यामसुन्दर की बाँकी झाँकी देखी है। वह वाणी ही यथार्थ वाणी है, जिसने वरदानियों में श्रेष्ठ विष्णु की विरुदावली का बखान किया है। जो भी इन्द्रियाँ भगवत् कैंकर्य में लगें, वे ही सार्थक हैं। जो भी व्यापार विष्णु की प्रीति के निमित्त हों, वे ही वास्तव में व्यापार हैं। नहीं तो समस्त कार्य संसार बन्धन को जकड़ने ही वाले हैं।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी। जब दक्ष यज्ञ में भगवान् प्रकट हुए, तब सभी उनकी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार स्तुति करने लगे। दक्ष, ऋत्विक, सदस्य और रुद्र भगवान् के स्तुति करने के अनन्तर भृगुजी खड़े हुए। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभो! मैं आपकी शरण में आया हूँ, आप मेरे ऊपर कृपा करें। वैसे तो आपकी माया ऐसी गहन है, सभी का आत्मज्ञान इस माया के अधीन होने से नष्ट हो गया है और लोगों की तो बात पृथक् रही, अज्ञानरूपी माया में सोये हुए ब्रह्मादिक देवता भी आपका तत्त्व यथार्थ में नहीं जानते।"

यह सुनकर ब्रह्माजी को बड़ा बुरा लगा—यह भृगु मेरा पुत्र होकर कहता है कि मैं भगवान के तत्त्व को नहीं जानता। अतः वे बोले—"भगवन्! मैं आपके तत्व को जानता हूँ। इन्द्रियों से जो कुछ दिखाई देता है, वह तो सब माया का पसारा है, आप मायिक पदार्थों से पृथक् हैं।"

इस पर इन्द्र बोले—"महाराज! हमें तो आपकी जो इस आठ भुजाओं वाली मनोहर मूर्ति के दर्शन हो रहे हैं, यही हमारे लिए सर्वस्व है। हमारे नेत्र तो इसी से सफल हो रहे हैं। इससे परे भी जो कोई कुछ मानते हों, वे मानें, हमें उनसे विवाद नहीं।"

इन लोगों की ऐसी तत्व ज्ञान की बात सुनकर दक्ष पत्नियाँ

ने हाथ जोड़कर विनती की—"महाराज, ये सब बातें तो होती ही रहेंगी, आपके यथार्थ रूप का आज तक न कोई निश्चय कर सका है, न आगे कर ही सकेगा। श्रुति भी नेति-नेति कह चुप हो जाती है। अतः प्रभो! ब्रह्माजी ने आपके पूजन के लिये यज्ञ की रचना की थी। उसी यज्ञ को रुद्र पार्षदों ने विध्वंस कर दिया। हमारी तो यही प्रार्थना है कि हे अरविन्दाक्ष! आप अपनी अमृतमयी दृष्टि से इस यज्ञ को निहारकर फिर से इसे यथायोग्य बना दीजिये। फिर से इसका उद्धार कीजिये।"

ऋषियों ने भी यजमान पत्नियों की हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कहा—"हाँ, महाराज! आपके लिये क्या बात है। जिस लक्ष्मी की संसार के सभी श्रेष्ठ पुरुष इच्छा करते रहते हैं, वह आपके चरणों में लोटती रहती हैं, आप उसका आदर भी नहीं करते। आपकी दृष्टि में आठों सिद्धि नवों निधि भरी पड़ी हैं।"

सिद्ध बोले—"महाराज, हमें तो आपका ध्यान रूपी अमृत चाहिये, जिसमें निमग्न होकर मन ब्रह्मानन्द सुख का अनुभव करता है।"

तब तो दक्ष प्रजापति की प्रधान पत्नी प्रसूति ने प्रेमपूर्वक भगवान् की विनती की—"प्रभो! आपके न आने से ही यह सब बखेड़ा हुआ। आप पहिले ही यज्ञ में पधार जाते तो न यज्ञ विध्वंस होता, न मेरी प्यारी पुत्री सती का ही विनाश होता। अस्तु जो हुआ, सो हुआ। अभी आप आये, यही क्या कम है? आपका स्वागत है, आपकी बहूरानी लक्ष्मी का भी स्वागत है। आप अपनी प्रिया के साथ हमारी रक्षा करें। हे पुरुषोत्तम! यज्ञ की शोभा, आपसे ही है, जैसे सम्पूर्ण शरीर की शोभा सिर ही से है।"

सब के मन में भृगुजी की बात खटक रही थी कि ब्रह्मादिक देवता भी आपके तत्व को नहीं जानते। इसलिये सभी अपनी-

अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् के तत्व को बताने की चेष्टा करने लगे। लोकपाल बोले—"महाराज! हमारी तो ठीक-ठीक कुछ समझ में नहीं आता कि आपका शुद्ध स्वरूप क्या है? आप इन्द्रियों के विषय तो हैं नहीं। पञ्च-भूतों से पृथक् आप जीव भी तो नहीं हैं?"

ऐसी संदेह की बात सुनकर योगेश्वर बोले—"हे विश्वेश्वर! आप आत्म रूप से सबके हृदय में विराजमान हैं। जो पृथक् भाव से आपको अपने आप में ही देखता है, उसी पर आप प्रसन्न होते हैं, हम तो आपको अनन्य भक्ति भाव से भावित होकर भजते हैं। हे भगवन्! हम भक्तों की भीति को दूर कीजिये। यद्यपि ब्रह्मादिक रूप आप धारण करते हैं, फिर भी आप इन मायिक गुणों से सर्वदा रहित हैं। जो भी हो, आपके चरणारविन्दों में हमारा प्रणाम है।"

वेदों ने कहा—"महाराज! आपके यथार्थ रूप का तो निर्णय हुआ नहीं; इसलिये आप जैसे हैं, तैसे ही को हमारा प्रणाम है।"

अग्नि बोले—"आप यज्ञ के रक्षक हैं, यज्ञ आपका ही रूप है, अतः यज्ञ स्वरूप आपको मेरा भी प्रणाम है।"

देवताओं को सदा असुरों का डर लगा रहता है। उन्हें सदा अपने इन्द्रासन और स्वर्ग की ही चिन्ता लगी रहती है, अतः वे बोले—"भगवन्! आप सदा से सबकी रक्षा करते हैं; प्रलय में जगत् को उदर में रखकर उसकी रक्षा करते हुए सो जाते हैं, योगिजन आपको भी हृदय में धारणकर लेते हैं, अतः आपको नमस्कार है।"

गन्धर्व बोले—"भगवन्! ये सब ऋषि-मुनि आपके अंश के भी अंश हैं। जादूगर की पिटारी की भाँति इस जगत् में जाने क्या अलाय-बलाय भरकर उनसे स्वयं ही बच्चों की तरह आप

खेलते रहते हैं, अतः हे क्रीड़ाप्रिय ! हे कौतुकी केशव ! आपको बार-बार प्रणाम है।"

इस पर विद्याधर बोले—"महाराज ! यह कैसा सुन्दर शरीर आपने दिया है। इसे पाकर लोग जाने क्या ऊट-पटाँग करते रहते हैं। इन ईंट-पत्थरों के मायिक पदार्थों में, मैं मेरा, तू तेरा करते-करते ही जीवन को व्यर्थ गँवा देते हैं। आपकी सुमधुर कथा को नहीं श्रवण करते। जिन्होंने आपके कथा रूपी अमृत का आस्वादन किया है, उनको मोह कैसे रह सकता है। अतः हम तो सबसे श्रेष्ठ आपकी सुन्दर सुललित कथा को ही समझते हैं।"

यह सुनकर ब्राह्मण बोले—"भगवन् ! यज्ञ का जितना साज समान है अर्थात् हवि, अग्नि, मन्त्र, समिधा, कुशा, यज्ञपात्र, सदस्य, ऋत्विक्, यजमान, यजमान पत्नी, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोम, घृत तथा बलि पशु सब आपही हैं पहिले पाताल में गई पृथ्वी का आपने ही सूकर रूप रखकर उद्धार किया था। हम तो यही समझते हैं कि संसार में आपका सुमधुर नाम ही सर्वश्रेष्ठ है। यज्ञ में जो भी त्रुटि रह जाती है, वे सब आपके नाम संकीर्तन से पूरी हो जाती हैं। हमारे यज्ञ में तो आप स्वयं साक्षात् रूप से ही प्रकट हो गये। अतः यज्ञ के पूर्ण होने में क्या सन्देह रहा। अब तो यह पूरा होकर ही रहेगा।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! जब इस प्रकार सभी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् की स्तुति विनय कर चुके तो सबकी बात सुनकर सर्वेश्वर सच्चिदानन्द श्रीहरि बड़े संतुष्ट हुए। दक्ष ने विधिवत् उनका पूजन किया, फिर उनका जो यज्ञ का प्रधान भाग-त्रिकपाल रूपी पुरोडास था, उसे बड़े भक्ति-भाव से, शास्त्र विधि के अनुसार उन्हें अर्पण किया। यज्ञेश्वर भगवान् अपने यज्ञ भाग को पाकर बड़े सन्तुष्ट हुए। ब्रह्माजी तथा रुद्रदेव

को सन्निधि में अपने भाग को ग्रहण करते हुए, वे मन्द-मन्द मुस्कराते हुए, दक्ष को लक्ष्य करके, सभी को सुनाते हुए, मेघ गम्भीर वाणी में तीनों देवों की एकता बताने लगे। विदुरजी! भगवान् के उपदेश को सुनने के लिये सभी बड़ी देर से उत्सुक हो रहे थे, अतः भगवान् को कुछ कहते देखकर, सभी सम्हलकर सावधानी के साथ बैठ गये और एकटक भाव से भगवान् की ही ओर निहारने लगे।"

छप्पय

विप्र कहें—हे विभो! आपई यज्ञ, सोम, घृत।
मन्त्र, अग्नि, कुश, समिध देव! तुम बलि पशु अरु व्रत॥
पुरोडास, यजमान आपई हविकूँ पावें।
नाम कीरतन करत यज्ञ त्रुटि सब नसि जावें॥
प्यावें प्रेम पियूष प्रभु, पुनि-पुनि पैरनिमहँ परहिँ।
शिवगण कृत विध्वंस मख, ताहिँ विभो! पूरनि करहिँ॥

दक्ष-यज्ञ की समाप्ति

[२१३]

रुद्रं च स्वेन भागेन ह्युपाधावत्समाहितः ।
कर्मणोदवसानेन सोमपानितरानपि ।
उदवस्य सहर्त्विग्भिः सस्नावबभृथं ततः ॥
तस्मा अप्यनुभावेन स्वेनैवावाप्तराधसे ।
धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशास्ते दिवं ययुः ॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, ७ अ०, ५६, ५७ श्लोक)

छप्पय

विष्णु भये सन्तुष्ट सबनि कूँ शिक्षा दीन्हीं ।
हौं, विधि, शिव सब एक भेद की व्याख्या कीन्हीं ॥
सबई हर्षित भये करयो आरम्भ यज्ञ फिरि ।
च्यौं न होहि मख पूर्ण जहाँ तीनों विधि हर हरि ॥
अति प्रसन्न ह्वै प्रजापति, शिवजी को पूजन करयो ।
सती यादि करि दक्ष के, नेह नीर नयननि भरयो ॥

---

*मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! यज्ञ समाप्त हुआ । यजमान दक्ष ने एकाग्र चित्त होकर भगवान् वृषभध्वज का उनके भाग से पूजन किया, फिर उदवसान नामक कर्म से और भी जो यज्ञ में सोमपायी तथा इतर देवता थे, उनका भी पूजन किया, फिर ऋत्विजों के साथ यज्ञान्त अवभृत स्नान किया । तदनन्तर उन प्रजापति दक्ष को जिन्होंने अपने पुरुषार्थ से ही समस्त समृद्धियों को प्राप्त किया है; उन्हें देवता यह वरदान देकर कि 'तुम्हारी मति सदा धर्म में बनी रहे' सब अपने-अपने स्थान अर्थात् स्वर्ग को चले गये ।"

शरीर के तीन भाग हैं, नाभि से नीचे का भाग, नाभि से ऊपर का भाग और सिर। तीनों ही जीवन के लिये अत्यावश्यक हैं। तीनों के बिना जीवन यात्रा नहीं चल सकती। संघात में ही सृष्टि है। त्रिगुणमयी सृष्टि त्रिदेवों के बिना चल नहीं सकती। अतः हमारे यहाँ तीन का बड़ा महत्व है। त्रिकाल, त्रिदोष, त्रिदेव, त्रिसवन, त्रयीवेद, त्रिगुण आदि तीन से सृष्टि चल रही है। इन तीनों में से जो एक का भी वहिष्कार करता है, तो तीनों असन्तुष्ट हो जाते हैं। इसलिए प्राचीन मर्यादा का भंग करके नूतन पंथ नहीं चलाना चाहिये। सत्य सनातन पथ का ही अनुसरण करना चाहिये।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी, जब सब पुरुष स्तुति कर चुके, तब भगवान् सब पर सन्तुष्ट हुए। हाथ जोड़े हुए सम्मुख प्रजापति दक्ष खड़े थे। अतः उनके प्रति भगवान् मेघ गम्भीर वाणी से सबको सुनाते हुए कहने लगे—"प्रजापति दक्ष! तुमने भूल की, जो शिवजी का अपने यज्ञ में वहिष्कार कर दिया। शिवजी का वहिष्कार नहीं किया, तुमने मेरा ही वहिष्कार किया।"

हाथ जोड़कर प्रजापति दक्ष ने कहा—"महाराज! आपके ही लिए तो मैंने यह सब ठाट रचा था। मैंने समस्त सम्भार आपकी प्रसन्नता के लिये तो एकत्रित किये थे। वैष्णव यज्ञ का ही तो मैंने आरम्भ किया था, फिर भी आप पधारे नहीं, मेरे ऊपर कृपा नहीं की। अब किसे दोष दूँ? सब मेरे भाग्य का ही दोष है।"

यह सुनकर भगवान् बोले—"भैया, तुम समझते तो हो नहीं। यह ठीक है, तुमने मेरे ही निमित्त यह सब सामग्री एकत्रित की थी, किन्तु शिवजी का तो आवाहन नहीं किया था। शिवजी मुझसे पृथक् हैं क्या? किसी के पैरों को बुलाओ, धड़ को न

बुलाओ, तो क्या अकेले पैर आ सकते हैं ? शिवजी, ब्रह्माजी सब मेरे ही रूप हैं। जगत् का एकमात्र कारण सबकी आत्मा, चराचर का ईश, साक्षी स्वयं प्रकाशक, कर्ता, भर्ता, हर्ता और विधाता मैं ही हूँ। मैंने ही अपनी त्रिगुणमयी माया का आश्रय करके जगत् की सृष्टि के लिये ब्रह्मा, पालन करने के लिये विष्णु और संहार करने के लिये रुद्र—ये, तीन रूप धारण कर लिये हैं। ये सब नाम मात्र को पृथक् हैं, वास्तव में एक मैं ही इन तीनों रूपों में कार्य कर रहा हूँ।

दक्ष ने कहा—"फिर महाराज ! सब लोग तीनों को पृथक् क्यों बताते हैं कि ब्रह्माजी राजस देव हैं, रुद्र तामस देव हैं, तथा विष्णु सत्त्व प्रधान देव हैं। सात्त्विक लोगों को रुद्र की उपासना नहीं करनी चाहिये।"

भगवान् शीघ्रता के साथ बोले—"ऐसा मूर्ख लोग सोचते हैं, जिन्होंने वृद्धों की सेवा नहीं की, सद् शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन नहीं किया। वे ही ऐसी बिना सिर पैर की ऊटपटाँग बातें बकते रहते हैं। सर्वान्तर्यामी, केवल अद्वितीय मुझ ब्रह्म में भेद-भाव के लिये स्थान कहाँ हैं ? देखिये, जैसे पुरुष के शरीर में हाथ हैं, पैर हैं, आँखें हैं, मुख है, सिर है; सब पृथक्-पृथक् होने पर भी मनुष्य किसी अवस्था में यह नहीं सोचता कि ये हाथ मैं नहीं हूँ, ये पैर मैं नहीं हूँ, सम्पूर्ण अङ्ग में एक-सा ममत्व है, मेरापन ऊपर से नीचे तक सभी अङ्गों में समान भाव से है, इसी प्रकार हम ब्रह्मा, शिव ये पृथक् से दीखने पर भी तत्त्व रूप से एक ही हैं।

दक्ष ने कहा—"तब आप एक के ही पूजन से सब सन्तुष्ट क्यों नहीं हो जाते। जैसे जड़ में पानी देने से वृक्ष की शाखायें पत्ते सभी तृप्त हो जाते हैं।"

भगवान् ने कहा—"हाँ, ठीक है; यदि रागद्वेष से रहित

होकर भेद भाव को दूर करके जो एक की भी पूजा करता है, उस पर हम सब समान भाव से सन्तुष्ट होते हैं, किन्तु जो द्वेष वश भेद-बुद्धि रखता है, जो हममें से किसी को छोटा बड़ा बताता है, हमारे किसी रूप की निन्दा करता है, उसे अपूज्य ठहराता है, तो उस पर हम सन्तुष्ट नहीं होते ! तीनों में से कोई भी उसके पास नहीं जाता, क्योंकि यह तत्त्व बोध से रहित अज्ञानी है। उसे न सिद्धि लाभ होती है और न वह शान्ति ही प्राप्त कर सकता है। किन्तु जो कार्य भेद से ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीन रूप धारण करने पर भी वास्तव में एक हैं, ऐसे हममें जो भेदभाव नहीं करता, वह स्वल्पकाल में ही शान्ति लाभ कर लेता है। ब्रह्मन् ! अब तुम हम तीनों को अभेद भाव से देखो। एक मानकर हम तीनों का समान भाव से पूजन करो, तुम्हारा कल्याण होगा।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! भगवान् के ऐसे सार-गर्भित उपदेश को सुनकर प्रजापति दक्ष कृतार्थ हो गये। उन्होंने तीनों देवों में अपनी अभेद बुद्धि स्थिर की। फिर उन्होंने यज्ञ-पति भगवान् का यज्ञ द्वारा पूजन किया। अर्थात् अपने यज्ञ के कार्य को विधि विधान पूर्वक आरम्भ किया। उस यज्ञ में सभी देवताओं का अङ्ग और प्रवान दोनों ही प्रकार से पूजन किया। तदनन्तर देवताओं ने जो ब्रह्माजी के कहने से रुद्र भाग की कल्पना की थी, उस रुद्र भाग से भगवान् भूत नाथ महेश्वर का भी भगवद् भाव से भावित होकर बड़ी श्रद्धा-भक्ति से पूजन किया। अन्य देवताओं का भी यथा योग्य पूजन सत्कार किया। यज्ञ कराने वाले ऋत्विक आदि को यथेष्ट दक्षिणा दी। प्रजा-पतियों के पति दक्ष ने सभी को दान मान और विपुल मात्रा में वस्त्राभूषण, धन देकर सन्तुष्ट किया। सभी उनकी उदारता का गान करने लगे, सभी उनके यश का विविधि भाँति से वर्णन

करने लगे, यज्ञ कार्य समाप्त करके प्रजापति यज्ञ में बड़ी धूमधाम से अवभृत स्नान की तैयारियाँ कीं। समस्त ऋषि, मुनि, देवता, यक्ष, गन्धर्व, ब्राह्मण, ऋत्विक्, पुरोहित, पत्नी सहित दक्ष को आगे करके भगवती भागीरथी में कनखल के समीप अवभृत स्नान के लिये गये। सभी ने वेद मन्त्रों द्वारा शास्त्रीय विधि से मृत्ति-का पञ्चगव्य, भस्म, अपामार्ग, आमलकी कुशा आदि पवित्र द्रव्यों से विधिवत् स्नान किया। फिर जल-क्रीड़ा आरम्भ हुई। सब एक दूसरे के ऊपर जल उलीचने लगे, जो स्त्रियाँ युवती थीं, वे अपने देवरों और पतियों के ऊपर जल उलीचने लगीं। कोई कुम्कुम हल्दी मिश्रित जल किसी के ऊपर डालते, कोई पिचकारी से किसी के मुख को ही भिगो देते, कोई वक्षःस्थल में मारते। कोई किसी को उठाकर जल में पटक देते, कोई गङ्गा रज ही किसी के शरीर पर पोत देते। इस प्रकार बड़े आनन्द और उल्लास के सहित वह यज्ञान्त अवभृत स्नान हुआ। दक्ष प्रजा-पति ने ब्राह्मणों याचकों और आश्रितों को यथेष्ट दान और पारितोषिक दिये। सभी दक्ष की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। पुनः आकर असंख्यों ब्राह्मणों को स्वादिष्ट पदार्थों द्वारा सन्तुष्ट किया गया। सभी को भोजन कराके दक्षिणा दी गयी। गन्धाक्षत से पूजन करके उनका सम्मान किया गया। याचक, अभ्यागत जो भी आये, सभी के मनोरथ पूर्ण किये गये। इस प्रकार वह यज्ञ बड़ी ही धूम-धाम से समाप्त हुआ।

विदुरजी! यज्ञ के सानन्द सकुशल समाप्त होने पर सभी देवताओं ने प्रजापति दक्ष को भाँति-भाँति के आशीर्वाद दिये। सभी ने कहा--"आपकी बुद्धि सदा धर्म में लगी रहें, आप इसी प्रकार सदा प्रजा की वृद्धि में लगे रहें।" इस प्रकार आशीर्वाद देकर, जो जहाँ से आये थे, वहाँ चले गये। भगवान् बैकुण्ठ को पधार गये, ब्रह्मदेव ब्रह्मलोक चले गये। भोले बाबा फिर कैलास

पर जाकर समाधि मग्न हो गये। देवता स्वर्ग को चले गये, पितर लोग पितृलोक में पधार गये। दक्ष तथा उनके भृत्य सेवक वहीं आनन्द से रहकर दण्ड पेलने लगे। इस प्रकार विदुरजी ! आप से यह मैंने अत्यन्त ही संक्षेप में दक्ष-यज्ञ की कथा कही। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?"

यह सुनकर विदुरजी बोले—"प्रभो ! आपने दक्ष यज्ञ की यह बड़ी ही अद्भुत कथा सुनायी। इसको सुनकर मेरा रोम-रोम खिल उठा। शिव महात्म्य सुनते-सुनते मेरी तृप्ति नहीं होती। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि सतीजी तो शिवजी की अनादि शक्ति हैं, वे किसी भी दशा में उनसे पृथक् नहीं हो सकतीं। जब सती रूप में उन्होंने अपने श्रीअङ्ग को योगाग्नि में भस्म कर दिया, तो वे फिर किस रूप से श्रीशिव को प्राप्त हुईं। किस रूप में वे अपने शक्तिमान् के समीप रहने लगीं। इस कथा को कृपा करके और सुनाइये।"

विदुरजी के ऐसे प्रश्न को सुनकर मैत्रेय मुनि सती के दूसरे जन्म की कथा कहने को उद्यत हुए।

छप्पय

फिरि सब विधिवत् विप्र पितर पूजे ऋषि मुनि सुर।
भयो यज्ञ परिपूर्ण गये सब जन निज-निज पुर॥
प्रजापतिनि के ईश दक्ष मनमहँ अति हरषें।
बजें दुन्दुभी आदि कुसुम सुरद्रुम के बरषें॥
दक्ष-यज्ञ की कथा जिह, विदुर ! यथा मति सब कही।
पूछो तुम जो हृदयमहँ, शङ्का अब जो कछु रही॥

—०—

सतीजी का पार्वती रूप में प्राकट्य

(२१४)

एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् ।
जज्ञे हेमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ॥*

(श्री० भा० ४ स्क० ७ अ०, ५८ श्लो०)

छप्पय

विदुर कहें—गुरुदेव ! सती तो शक्ति सनातन ।
शिव तजि अनत न जाहिँ सुनी जिह प्रथा पुरातन ॥
कैसे तजि के देह मिली फिरि कस शङ्कर कूँ ।
जिहि ध्यावत तनु तजहिँ फेरि पावहिँ तिहिँ वर कूँ ॥
सुनि बोले मैत्रेय मुनि, विदुर ! सुनो इतिहास सब ।
हिमगिरि मेना की सुता, सती भईं जस कहूँ अब ॥

किसी को देखते ही चित्त उसकी ओर स्वतः ही आकर्षित होने लगता है, हृदय उसे परम आत्मीयता के साथ स्वीकार कर लेता है। कोई वर्षों साथ रहते हैं, उनके प्रति तनिक भी आकर्षण नहीं होता। उनके प्रति मन सदा उदासीन ही बना रहता है। कुछ लोग अकारण ही बिना परिचय सम्बन्ध से ही द्वेष करने लगते हैं। इसका क्या कारण है ? कोई तो क्षण भर

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! हमने ऐसा सुना है कि भगवती सती देवी अपने पूर्व देह को त्यागकर, हिमालय के घर उनकी पत्नी मेना के गर्भ से, पार्वती रूप में फिर से प्रकट हुई।"

में ही घुल-मिल जाते हैं, कोई जीवन भर साथ रहने पर भी मन से दूर बने रहते हैं। ये सब पूर्व जन्मों के संस्कारों का ही परिचय है। यह अटल सिद्धान्त है कि संसार में हमारा उन्हीं व्यक्तियों से सम्बन्ध होगा, जिनसे पूर्व जन्म में कुछ सम्बन्ध रहा हो, या आगामी जन्मों में जिनसे सम्बन्ध होने वाला हो। मनुष्य जो भी कुछ पाप-पुण्य सोचता है, उसका फल अवश्य होता है। यदि हम कोई पुण्य की बात सोचें, तो आगामी जन्मों में अवश्य पूरी होगी, इसी भाँति पाप की बात भी। मन तो हर समय कुछ-न-कुछ सोचता ही रहता है। उसके कुछ-न-कुछ संस्कार हृदय पर बनते ही रहेंगे। मनुष्य न चाहे तब भी उसके अच्छे-बुरे विचारों का फल होगा ही; जैसे घुन का कीड़ा धूलि में चलेगा, तो उसके पैर के चिह्न बनेंगे ही, चाहे वह चाहे या न चाहे।

कुछ संस्कार अत्यन्त साधारण होते हैं, आये चले गये। उनका सुख-दुःख मानसिक ही होता है। कुछ ऐसे संस्कार विचार होते हैं, जिनका फल स्वप्न में ही भोग लिया जाता है क्योंकि सब संस्कारों को प्रतिक्षण जन्म लेता रहे, तो भी मनुष्य भोग नहीं सकता। अतः बहुत से कर्मों का मानसिक सुख-दुःख के द्वारा, बहुतों का स्वप्न के द्वारा भोग होता है जो प्रबल संस्कार होवे हैं, हृदय में जम जाते हैं। जिसके लिये प्राणी प्रबल प्रयत्न पुरुषार्थ करता है उसका फल प्रत्यक्ष भोगना पड़ता है। जिससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, वह हमें अत्यधिक प्यार करता है, तो समझना चाहिये कि पूर्व जन्मों में हमारा इससे कोई घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा। जो हमें अत्यन्त ही प्यारा लगता है, जिसे देखे बिना हृदय में चैन नहीं पड़ता और साथ ही वह भी हमें उतना ही प्यार करता है, दूर रहने पर भी वह हमारे मन में

बसा हुआ हैं, तो समझना चाहिये कि एक दिन उसे हम अवश्य प्राप्त करेंगे।

यही सोचकर शौनकजी ने सूतजी से पूछा--"सूतजी ! सती जी तो शिवजी को अत्यन्त ही प्यार करती थीं। शिवजी के प्रेम का तो पूछना ही क्या ? उन्होंने प्रेम वश सती को अपना आधा अंग ही दे दिया था। आधे स्त्री बन गये थे, आधे पुरुष। इसी लिये उन्हें अर्धनारी नटेश्वर कहते हैं। दोनों में अद्वितीय, अनुपम स्नेह था। घटना क्रम से पिता को निमित्त बनाकर भगवती सती को अपना शरीर त्यागना पड़ा। त्याग के समय भी वे शिवजी का ही ध्यान करती हुई--उन्हें ही फिर से प्राप्त करने की इच्छा से--योगाग्नि में भस्म हुई थीं। ऐसा तो अन्त तक सती का शिव में स्नेह रहा। इधर सती के वियोग में हमने सुना है, शिवजी उन्मत्त हो गये। उन्होंने विरहियों की सभी दशायें दर्शाई। उन्होंने अपनी प्रिया के वियोग में वस्त्र उतारकर फेंक दिये, नंग-धड़ंग होकर लोक-लाज छोड़कर वे स्मशानों में रोते रहे। सतीजी के मुण्ड की माला को पहनकर, उनकी चिता की भस्म को शरीर पर लपेटकर भी उन्हें शान्ति नहीं हुई। वे हा प्रिये ! हा सती ! कहकर सदा विह्वल रहते थे। इतने प्रेम में वियोग क्यों हुआ ?"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाभाग ! प्रेमियों में कभी वियोग नहीं होता। जिन्होंने हमारे हृदय को पकड़ लिया है, वे सदा मिले रहते हैं। मन से सदा वे एक दूसरे को कसकर पकड़े रहते हैं। शरीर का वियोग तो प्रेम को और बढ़ाता है। वह वियोग प्रेम को और उज्वल बनाकर चमका देता है। वियोग न हो, तो संयोग सुख का आस्वादन ही न हो सके। सतीजी के मन में तो सदाशिव बने ही रहते हैं। शिवजी भी सदा सती का ही चिन्तन करते हैं। दोनों अभिन्न हैं; एक हैं। लोक लीला

करने के लिये, भक्तों की मनोवांछा पूर्ण करने के लिये संसार में अपनी सुखद लीलाओं का विस्तार करने के लिये, वे ऐसी-ऐसी करुणा उत्पन्न करने वाली क्रीड़ायें करते हैं, जिनसे जीवों के चित्त में शिवा शिव के गुणों में अनुराग हो। महाभाग! सतीजी ने हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ से पार्वती रूप से अवतार धारण करके अपने सर्वस्व भगवान् भूतनाथ को पुनः पति रूप से वरण किया?"

यह सुनकर शौनकजी बोले—"सूतजी! हिमालय तो जड़ है। इसकी बहू के लड़का-लड़की कैसे हुए।"

इस पर सूतजी बोले—"महाराज! जड़ कौन है? सभी चैतन्य हैं। सबके आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीन रूप होते हैं। आध्यात्म रूप से तो श्रीहरि ही सबमें रम रहे हैं और आधिभौतिक रूप से यह पंचभूतों का संहात रूप से प्राणिमात्र का शरीर है। उसी तरह मिट्टी, पत्थर, वृक्ष, गुफाओं वाला हिमालय का यह दिखाई देने वाला रूप आधिभौतिक है और इसके जो अधिष्टातृ देव हैं, वे विष्णु के अंश से अवतरित एक गिरिराज विशेष हैं। उनका विवाह पितरों की बड़ी लड़की मेना के साथ हुआ। उस भाग्यवती मेना को ही भगवती पार्वती की जननी होने का विश्ववन्दित पद प्राप्त हुआ।"

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! ये महाभाग्यवती मेना देवी कौन थीं। किस कारण से इन्हें जगन्माता आद्याशक्ति की माता होने का देव दुर्लभ पद प्राप्त हुआ?"

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए सूतजी कहने लगे—"शौनकजी! किसी कर्म के द्वारा कोई जगन्माता विश्ववन्दिता आद्याशक्ति को प्राप्त थोड़े ही कर सकता है, जिस पर वे स्वयं कृपा करें, जिस पर वे अपने आप प्रसन्न हो जायँ, जिसे वे प्रेम से लबालब भरा हृदय स्वयं ही दया करके दे दें, वही उन्हें प्राप्त कर सकता है।"

फिर भी माँ जगदम्बिका कार्य के पूर्व कुछ कारण उत्पन्न कर देती है। यह मैं पहले ही बता चुका हूँ कि प्रजापति दक्ष ने अपनी एक कन्या स्वधा नाम की पितरों को दी थी। पितरों ने मानसिक संकल्प से उसमें तीन कन्यायें पैदा कीं। बड़ी का नाम मेना, मध्यमा का नाम धन्या और छोटी का नाम था कलावती। पितरों की दिव्य मानसिक कन्या होने के कारण इनका सभी लोकों में प्रवेश था। एक दिन ये तीनों कन्यायें ब्रह्माजी की सभा में बैठी थीं। उसी समय सनकादि चारों कुमार वहाँ आये। उनको देखकर सभी ऋषि, मुनि उठकर खड़े हो गये, क्योंकि वे सबके पूर्वज होने से पूजनीय हैं, अभ्युत्थान के योग्य हैं; किन्तु ये तीनों कन्यायें उन छोटे-छोटे कुमारों के अनुपम रूप लावण्य को देखकर शिव माया में ऐसी विमोहित हो गईं कि अभ्युत्थान देना भूल गईं। भोलेपन से बैठी-की-बैठी ही रह गईं। ऋषियो! ये सब कार्य भगवान् की इच्छा से ही होते हैं, वे खेल करना चाहते हैं। उनकी ऐसी अविनय समझकर सनतकुमार ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम्हारा दिव्य भाव नष्ट हो जाय, तुम तीनों पृथ्वी पर जाकर मनुष्य भाव को प्राप्त हो जाओ।"

यह सुनकर तीनों ने विनय की—"महाराज! हमारे मन में न तो कोई कुत्सित भाव ही था, न अहंकार के वशीभूत होकर हमने ऐसा किया। हम तो आपके तेज को देखकर विमुग्धा बन गईं।" ऋषियों का क्रोध पानी की लकीर के समान होता है। तुरन्त ही प्रसन्न होकर वे बोले—"जो बात मुख से निकल गई, वह तो होकर ही रहेगी। फिर भी तुम मर्त्यलोक में जाकर भी इतनी भाग्यशालिनी होओगी कि संसार में तुम विश्ववन्दिता समझी जाओगी। तुम्हारे तीनों के गर्भ से आद्याशक्ति भगवती जगदम्बिका तीन रूपों से अवतार धारण करेंगी, उनके दर्शनों से तुम तीनों मुक्त हो जाओगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! कुमारों का क्रोध भी मुक्ति का कारण होता है। वे तीनों ही पृथ्वी पर प्रकट हुईं। पहली मेना का विवाह गिरिराज हिमालय के साथ हुआ, जिनके गर्भ से विश्व-वन्दिता शिवपत्नी भवानी ने जन्म लिया। दूसरी धन्या राजर्षि जनक की पत्नी हुई, जिन्हें भगवती सीता की माता कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और तीसरी कलावती व्रज में वृषभानुजी की पत्नी देवी के नाम से विख्यात हुईं, जिन्हें राधिकाजी की जननी कहलाने का महा-महा सौभाग्य प्राप्त हुआ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! मेना का विवाह विष्णु अंश से उत्पन्न समस्त पर्वतों के राजा हिमालय के साथ हुआ। हिमालय पर ही भगवान् शम्भु रहते थे, इसीलिये मेना को भगवान् भूत-नाथ के देव दुर्लभ दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता रहता था।"

इस पर सूतजी बोले—"महाभाग ! महाभाग्यवती मेना देवी ने कौन-सा ऐसा सुकृत किया था, जिससे महामाया जगदम्बिका उनकी पुत्री हुईं ?"

इस पर सूतजी बोले—"मुनिवर ! देवी को कोई अन्य साधनों से संतुष्ट नहीं कर सकता, वे तो प्रेम से ही वश में होती हैं। जब शिवजी सती को विवाह करके कैलास ले आये थे, तब सतीजी कुछ उदास-सी रहती थीं। लड़की जब पहले ही पहल विवाह के पश्चात् ससुराल आती है, तो उसका मन नहीं लगता। माता, पिता, बहिन, भौजाई आदि की उसे याद आती रहती है। ससु-राल में आकर उसे सास, नँनद, देवरानी, जिठानी, देवर, जेठ, ससुर आदि का प्यार प्राप्त होता है, तो घर की याद भूल जाती उसका मन यहीं लग जाता है। पति की प्रेम पात्री होने से फिर उसे घर में सास कर्कशा हो, नँनद, जेठानी लड़ाकू हो अथवा घर में प्यार करने वाला कोई भी न हो, अकेले पति-पत्नी ही हों और पति भी कुछ रूखे स्वभाव का हो, तो इस दशा में लड़की

के लिए ससुराल कारावास के समान, नरक के समान हो जाता है। जैसे-तैसे वह अपने दिन काटती है।"

सतीजी के सास, नँनद, देवरानी, जिठानी तो कोई थीं नहीं, केवल शिवजी-ही-शिवजी थे। यद्यपि शिवजी सतीजी को बहुत प्यार करते थे, किन्तु इन बाबाजियों के प्यार का क्या विश्वास? जहाँ समाधि लगाई कि सबको भूल गये। जब शिवजी समाधि में मग्न हो जाते, तो सती अकेली उनकी सेवा में लगी रहतीं। शिवजी के गण जो भूत, पिशाच, डाकिनी, साकिनी, प्रथम, बैताल आदि थे उन्हें देखते ही सतीजी डर जातीं। उनसे बातें करने की इच्छा ही न होती। ऐसे समय में गिरिराज की प्रिया मेना देवी. उन्हें पुत्री की भाँति प्यार करतीं, उनसे अत्यन्त स्नेह करतीं, उन्हें अपनी सगी बच्ची के समान स्नेह से स्वयं निहलातीं। उनके श्री अंग में दिव्य अंगराग लगातीं, चरणों में महावर लगा देतीं, वेंणी गूँथ देतीं, उसमें भाँति-भाँति के सुन्दर, सुगन्धित सुमन खोंस देतीं। फिर उनके मुँह को पोंछकर हृदय से लगा लेतीं। वे भूल ही जाती थीं कि यह मेरी सगी पुत्री नहीं है। सतीजी की सुन्दरता को वे दिन-रात्रि सोचती ही रहतीं। अहा! कैसी मनोहर बच्ची है। दक्ष पत्नी प्रसूति कितनी भाग्यशालिनी हैं, कैसे कन्या रत्न को उन्होंने प्रसूत किया है। यथार्थ में वे प्रसूति ही हैं। ये यदि मेरी सुता होतीं, तो संसार में मेरे समान सौभाग्य-शालिनी नारी और कौन हो सकती थी। रात्रि भर यही सोचती रहतीं, प्रातः आकर फिर सतीजी को प्यार करतीं। वे उनके गुण, शील, स्वभाव, तेज, प्रभा, सौन्दर्य, सद्गुणों आदि पर इतनी मुग्ध थीं कि उन्हें सती को बिना देखे चैन ही नहीं पड़ता था। सोचती थीं कि इन्हें आँखों में बिठा लूँ, हृदय में चिपकाये रहूँ। इनके कमल मुख को अपलक निहारती ही रहूँ। उनके ऐसे प्रेम से सन्तुष्ट होकर सर्वेश्वरी सती ने सोचा शैल प्रिया की

मनोकामना को मैं पूरी करूँगी, इनके उदर से उत्पन्न होकर दुहिता बनूँगी, इन्हें पुत्री जनित सुख को दूँगी। यही कारण था कि उन्होंने दक्ष के यज्ञ में अपना शरीर त्याग दिया। नहीं तो सतीजी को पितृ घर में जाने की क्या इच्छा थी और उन्हें मान अपमान से क्या था? केवल मेना की मनोकामना पूर्ण करने के ही लिए उन्होंने यह क्रीड़ा रची थी।

सती योगाग्नि में भस्म हो गईं। मेना को बड़ा दुःख हुआ। उनका सती के प्रति वात्सल्य प्रेम था। वे इस बात को भूल ही गई थीं कि ये त्रिभुवन की अधीश्वरी विश्व ब्रह्माण्डों की जननी तथा प्राणिमात्र की पूजनीया आराधनीया महामाया हैं। माधुर्य्य में ऐश्वर्य रहता ही नहीं।

जब देवताओं ने सती के वियोग में शिवजी को अत्यंत ही दुखी देखा, तो ब्रह्मादिक देवों ने मिलकर महामाया की आराधना की। देवताओं के तप से संतुष्ट होकर शिवलोक निवासिनी सर्व-व्यापिनी निर्गुण महामाया साकार रूप से प्रकट हुईं और देवताओं से वरदान माँगने को कहा। देवताओं ने यही वरदान माँगा कि विश्व की स्थिति के लिये आप पुनः साकार रूप में प्रकट हों। महामाया ने कहा--"मैं गिरिराज हिमालय की पत्नी मेना के प्रेमपाश में बँध गई हूँ, अतः उन्हीं के घर पुत्री होकर प्रकट होऊँगी। तभी सदाशिव को पुनः पूर्ववत् वरण करूँगी।" इतना कहकर महामाया अन्तर्धान हो गईं। ब्रह्मा, विष्णु आदि देव सभी शैलराज के समीप गये। उन्हें पत्नी सहित देवी की आराधना करने का उपदेश देकर लौट आये।

इधर मेना देवताओं के कहने से तथा सन्तान की कामना से निरन्तर महामाया भगवती जगदम्बिका कालिका देवी की आराधना में प्रवृत्त हुईं। वे चैत्र तथा आश्विन की नव-दुर्गाओं में निराहारादि व्रत करके अत्यन्त श्रद्धा भक्ति से देवी जगदम्बिका

का पूजन करतीं। इस प्रकार पूजन करते-करते उन्हें २७ वर्ष हो गये। अन्त में देवी प्रसन्न होकर उनके सम्मुख साकार रूप में प्रकट हुईं और वरदान माँगने को कहा। मेना ने विविध भाँति से

महामाया की स्तुति करके उनसे सौ पुत्र और अन्त में उन्हें ही पुत्री रूप में पैदा होने का वर माँगा। महामाया ने 'तथाऽस्तु'

कहकर उन्हें वर दिया और उनके यहाँ स्वयं भी पुत्री रूप में प्रकट होने का आश्वासन दिया।

कालान्तर में मेना गर्भवती हुईं, क्रम से उनके सौ पुत्र बड़े तेजस्वी और बलवान् हुए, जो सब मैनाक नाम से विख्यात हुए। ये सभी पङ्ख वाले थे, इन्द्र ने इन सबके क्रुद्ध होकर पङ्ख काट दिये, केवल एक समुद्र से मित्रता होने से बच गया, जिसे समुद्र ने अपने भीतर छिपा लिया था। यह वही मैनाक है, जो सीता-न्वेषण के लिये जाते हुए हनुमान्‌जी के स्वागत के लिये समुद्र के कहने से समुद्र के बीच में प्रकट हुआ था।

सौ पुत्रों के अनन्तर शुभ दिन शुभ मुहूर्त में स्वयं साक्षात् भगवती जगदम्बिका हिमालय के घर मेना के गर्भ से उत्पन्न हुईं। उनके प्रकट होते ही, विश्व ब्रह्माण्ड में आनन्द की बाढ़-सी आ गई। सभी का मन प्रसन्न हुआ, देवताओं ने स्वर्ग से दुन्दुभी बजाई, गन्धर्व प्रेम में मग्न होकर गायन करने लगे अप्सरायें नृत्य करने लगीं। सभी के मन मुकुर खिल गये। सबके हृदय उल्लास से भर गये। हिमालय ने सभी संस्कार शास्त्रीय विधि से कराये। भगवती जगदम्बा के श्रीअङ्ग का रङ्ग शरद्‌कालीन नील-कमल के समान कृष्ण वर्ण का था। अतः उनका नाम 'कालिका' रखा गया। इसके अतिरिक्त तारा, महाविद्या, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्न-मस्ता, विद्या, धूमावती, बगुलामुखी, सिद्धविद्या, कमलान्तिका आदि और भी अनेक नाम इनके प्रसिद्ध हुए। पर्वत की पुत्री होने से सभी इन्हें पार्वती के नाम से पुकारने लगे। शुक्ल पक्ष की चन्द्रमा की कला के समान भगवती पार्वती हिमालय के घर में बड़े लाड़, चाव और स्नेह के साथ-साथ बढ़ने लगीं। पैरों में पाइजेब पहिनकर जब वे रुनझुन-रुनझुन करती हुईं इधर-से-उधर घूमतीं, तो स्नेह के कारण पृथ्वी देवी के भी रोमाञ्च हो जाते। वे भगवती के कमल की कोमल पङ्खड़ियों से

भी अधिक सुकोमल रक्त वर्ण के उनके पादतलों को चूम लेतीं। मेना का हृदय ऐसी सर्वलक्षणा पुत्री को पाकर बाँसों उछलता। उन्हें निरन्तर देखते रहने पर भी उनका हृदय नहीं भरता, चित्त चाहता था, सदा इसे हृदय से चिपटाये रहूँ। पल भर भी आँखों से ओझल न होने दूँ। माताओं को अपनी इकलौती सर्वलक्षण-सम्पन्ना पुत्री कितनी प्यारी लगती है, इसे बिना माता बने कोई अनुभव कर ही नहीं सकतीं।

पार्वती कालिका देवी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती थीं, त्यों-त्यों उनका सौन्दर्य निखरता जाता था, वे अपनी अनुपम आभा से विनिन्दित करने वाले, अपने सुरीले स्वर से जब वे कुछ बोलतीं, तो ऐसा लगता, मानों दिव्य कोकिल कूज रही हो। जब वे हँसतीं, तो ऐसा लगता था, मानों असंख्यों मोती उनके मुख से झर रहे हों। काली-काली घँघराली लटों को लटकाकर जब वे लड़कपन के स्वाभाविक अल्हड़पने के साथ, पुष्प चुनती थीं, तो ऐसी लगतीं कि स्वयं पुष्पश्री ही मूर्तिमती होकर पुष्पोद्यान में विचरण कर रही हो। जो भी उन्हें देखता वही मुग्ध हो जाता। भूलोक में ऐसा सौन्दर्य असम्भव है, वे साक्षात् सौन्दर्य की सजीव प्रतिकृति ही प्रतीत होती थीं। उनका अनवद्य सौन्दर्य सुर ललनाओं में भी ईर्ष्या, स्नेह और उल्लास को उत्पन्न करने वाला था। शनैः-शनैः उन्होंने बाल्यकाल को त्यागकर यौवनावस्था में प्रवेश किया। इधर राम-कृष्ण गुन गाते, वीणा बजाते नारदजी शिवजी की प्रेरणा से हिमालय के यहाँ पहुँचे। वीणा की झङ्कार सुनते ही गिरिराज अपनी पत्नी और पुत्री के सहित उठे तथा वे भगवान् नारदजी की विधिवत् पूजा करके उनकी स्तुति करने लगे। मेना ने अपनी प्यारी पुत्री को पुचकारकर कहा—"बेटी! भगवान् नारद मुनि के पैर पकड़। इनकी कृपा होगी तो तुम्हें सुन्दर-सा मलूक-सा दूल्हा मिल जायगा।"

लजाते हुए पार्वतीजी ने देवर्षि के पैर पकड़े। मुनि ने उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"बेटी! ला, तेरा हाथ देखूँ।"

अत्यन्त सकुचाते हुए सर्वेश्वरी ने अपना सर्वलक्षणलक्षित कर-कमल मुनिवर के सम्मुख कर दिया। उस कमल से भी कोमल, मखमल से भी मुलायम, नवनीति से भी स्निग्ध, छुई-मुई से भी

अधिक लजीले, तत्क्षण उत्पन्न हुए पीपल के पत्ते से भी मधुर रेखाओं वाले श्रीहस्त को देखकर देवर्षि अवाक् रह गये। सब देख-दाखकर बोले--"और सब तो ठीक है, एक कुछ कमी-सी है।"

माता-पिता का तो इस शब्द को सुनकर ही मुख फक्क पड़ गया। व्यग्रता के साथ बोले--"प्रभो! वह कौन-सी कमी है?"

नारदजी सरलता के स्वर में कहने लगे--"यही है कि इसका जो पति होगा वह नग्न, निर्गुण, निरञ्जन, निर्विकार तथा माता पिता से रहित होगा।"

मेना को तो मानों पाला मार गया हो, उनका रक्त पानी हो गया। वे घबड़ाती हुई बोलीं—"महाराज, यह तो बड़ी गड़बड़ी है। इसका प्रतिकार कैसे हो?"

नारदजी ने कहा—"इसका एक ही उपाय है। शिवजी के साथ इनका विवाह कर दिया जाय, तो ये सब दूषण-भूषण बन जायँ, सभी दुर्गुण सगुण हो जायँ, सभी कुलक्षण सुलक्षण के रूप में परिणत हो जायँ।"

यह सुनकर उदास मन से गिरिराज बोले—"प्रभो! यह तो सब सत्य है, शिवजी तो निर्विकार हैं, समस्त कामनाओं से रहित हैं, परमेश्वर हैं। वे मेरी पुत्री का पाणिग्रहण कैसे कर सकते हैं। फिर उन्होंने तो यहाँ हमारे ही सामने सती के स्नेह से सन्तुष्ट होकर यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारे अतिरिक्त किसी भी स्त्री के साथ विवाह न करूँगा। सतीजी तो भस्म हो गईं, अब शिवजी अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग कैसे कर सकते हैं?"

नारदजी ने कहा--"गिरिराज! ये भगवती कालिका देवी वे ही दाक्षायणी शिवा सती देवी हैं, तुम्हारा तथा तुम्हारी पत्नी की भक्ति से ये तुम्हारे घर पुत्री रूप में प्रकट हुई हैं। शिव के अतिरिक्त इन्हें स्पर्श करने की सामर्थ्य और किसी में नहीं है,

अतः तुम सभी सन्देहों को त्यागकर इनका विवाह शिव के साथ करने का प्रयत्न करो। शिवजी तप से सन्तुष्ट होते हैं, अतः अपनी पुत्री को तप करने में प्रवृत्त करो।" इतना कहकर नारदजी तो चले गये, किन्तु माता-पिता को बड़ा सोच हो गया। हमारी पुत्री इतनी सुकुमारी है कि पुष्पों की पंखुड़ियों से भी उसके तलुवे लाल हो जाते हैं, वह घोर तप कैसे कर सकेगी? पार्वती देवी तो सब समझती ही थीं, अतः उन्होंने पिता से कहा—"पिताजी! स्वप्न में मुझे किसी वृद्ध ब्राह्मण ने शिवाराधन और तप करने का आदेश दिया है।" यह सुनकर गिरिराज ने कहा—"बेटी, मैंने भी आज रात्रि में ऐसा ही स्वप्न देखा है। शिव तो सर्वेश्वर हैं, वे तो महेश्वर हैं, उनकी सेवा का सुयोग तुझे प्राप्त हो जाय, तब तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ।"

यह सुनकर पार्वतीजी को परम प्रसन्नता हुई। उसी समय हिमालय ने सुना—"सती विरह से दुखी हुए भगवान् शिव मेरे समीप के ही शैल शिखर पर तपस्या करने के लिये ठहरे हुए हैं, तब तो वे अपने बहुत से सेवकों के सहित नाना उपहारों को लिये हुए शिवजी की सेवा में उपस्थित हुए। शिवजी को साष्टांग प्रणाम करके शैलराज ने उनकी कुशल पूछी, अपने भाग्य की सराहना की और योग्य सेवा के लिये प्रार्थना की। उनके शील-स्वभाव से सन्तुष्ट होकर शिवजी बोले—"गिरिराज! अब तो हम यहाँ रहेंगे ही। आप आते रहें, आपके तो हम एक प्रकार से प्रजा ही हो गये।"

हिमालय ने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभो! विश्व ब्रह्माण्ड के जीव आपकी प्रजा हैं, आप प्राणिमात्र के प्रभु हैं, अपने प्राणों को अर्पण करके भी मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ, तो मेरा सौभाग्य ही होगा।" इस प्रकार बहुत देर तक बातें होती रहीं।

शिवजी ने शैलराज को नित्य आने की अनुमति दे दी, इस प्रकार शिव-आज्ञा पाकर पर्वतराज हिमालय अपने घर लौट आये।

दूसरे दिन वह अपनी सर्वलक्षणा कन्या कालिका देवी को भी साथ ले गये। पिताजी की आज्ञा से पार्वती ने पशुपति के पाद पद्मों में प्रेम भरित हृदय से प्रणाम किया। अपनी सबसे

प्यारी खोई हुई वस्तु को कौन नहीं पहिचान लेता ? सर्वज्ञ शिव तो सब समझते ही थे। इन्हीं का ही विरह तो हमें व्यथित तथा व्याकुल बनाये रहता था। अपनी चिरसंगिनी अभिन्न शक्ति को पाकर वे परम प्रसन्न हुए। शैलराज ने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभो ! यह मेरी पुत्री है, बड़ी सीधी है, आपके चरणारविन्दों में इसका अत्यधिक अनुराग है। मैं इसे अपनी ओर से आपकी सेवा में नियुक्त करता हूँ। यह सब प्रकार से आपकी सेवा किया करेगी। इसे आप सेवा के लिये स्वीकार करें और अपने गणों को आज्ञा दे दें। यह जब भी अपनी सखी सहेलियों के सहित भगवान् की सेवा के लिये आवे तो इसे कोई रोके नहीं।"

शिवजी को तो यह अभीष्ट ही था, किन्तु स्थूणाखनन न्याय से इस बात की पुष्टि कराने के लिये, गिरिराज की इच्छा को बलवती बनाने के अभिप्राय से बोले—"देखिये, राजन् ! आप इतने बड़े बुद्धिमान् होकर भी ऐसी अन्याय की बात कर रहे हैं। मैं एकाकी तपस्वी हूँ। तुम्हारी कन्या एक आध बार दर्शन कर जाय, यह तो ठीक है, किन्तु निरन्तर सेवा में रखना यह मेरे लिये, इसके लिये—दोनों के लिये–ही घातक है, इसलिये मैं इसकी सेवा को स्वीकार नहीं कर सकता।"

दीनता के स्वर में शैलराज ने कहा—"प्रभो ! मेरी कन्या में क्या दोष है, जिससे आप इसे अपनी सेवा के अयोग्य समझते हैं ? आप मेरे सर्वश्रेष्ठ अतिथि हैं, जितेन्द्रिय हैं, विश्वनाथ हैं, ईश्वर हैं, सर्व शक्तिमान् हैं, आपकी सेवा से तो इसका कल्याण-ही-कल्याण है। मैं तो इसमें कोई दोष ही नहीं देखता। सबके आराधनीय आप ही हैं। आपकी सेवा इसे प्राप्त हो सके, तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ।"

शिवजी ने कहा—"भैया, यह सब ठीकहै, तुम्हारी कन्या सर्वगुणसम्पन्ना, सुशीला तथा साध्वी है, फिर भी मैं तो माया से

रहित तपस्वी हूँ। स्त्री के समीप रहना, तपस्या में बड़ा विघ्न है। स्त्री संगति ज्ञान वैराग्य को नाश करने वाली और संसार बन्धन को जकड़ने वाली है। अतः मोक्ष की कामना वालों को स्त्रियों से सदा दूर ही रहना चाहिये, उनसे कभी एकान्त में बातें न करनी चाहिये। आवश्यक प्रयोजन भर बातें करनी हों, तो किसी के सम्मुख करे। यह चित्त चंचल है। प्रकृति का संसर्ग होने से अनर्थ की सृष्टि तत्क्षण करने लगता है, अतः ऐसी बात आप फिर कभी भूल कर न कहें।"

शिवजी की ऐसी वैराग्य भरी गूढ़ बातें सुनकर गिरिराज तो उदास-से हो गये। वे अपनी प्यारी पुत्री पार्वती के मुख की ओर निहारने लगे। पार्वती को उन्होंने बाल्यकाल से ही पढ़ाया था, उनको क्या पढ़ाना था, वे तो सम्पूर्ण वेद शास्त्रों की जननी ही हैं, फिर लौकिक रीति से उन्हें सब शास्त्र पढ़ाये थे और उन्हें पढ़ते ही सब याद हो गये थे, अतः शिवजी की ऐसी बात सुनकर अपने पिता से आज्ञा लेकर वे विनीत भाव से शिवजी को प्रणाम करके उनसे बोलीं--महाराज ! आप कैसा घोर-से-घोर तप करेंगे ?"

शिवजी बोले—"अपनी शक्ति के अनुसार करेंगे।"

पार्वतीजी हँसकर बोलीं--"जब आप शक्ति के ही आश्रय से तप करेंगे, तो शक्ति क्या है। प्रकृति का ही नाम तो शक्ति है, शक्ति का ही आश्रय लेकर ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं। शक्ति के बिना कुछ नहीं। सभी प्रकृति के अधीन हैं। प्रकृति के बिना महेश्वर क्या कर सकते हैं ? सभी प्रकृति के वशीभूत हैं। आप भी तो प्रकृति के वशीभूत होकर तप करने को उद्यत हुए हैं।"

यह सुनकर हँसते हुए भगवान् शम्भु बोले—"मैं तपस्या कर के प्रकृति को नाश कर दूँगा। प्रकृति से परे हो जाऊँगा।"

इस पर शीघ्रता से पार्वतीजी बोलीं--"यह जो आप कह रहे हैं प्रकृति नहीं है। सूक्ष्म प्रकृति सर्वव्यापिनी शक्ति से रहित होने पर आपको कौन पूँछेगा ? जितना भी बोलना चालना, कहना, सुनना है, सब प्रकृति के अन्तर्गत है। आप जो भी खाते-पीते हैं, उठते बैठते हैं सब प्रकृति वश ही करते हैं। यदि आप कहें कि हम तो ज्ञानी हैं, प्रकृति हमारा क्या कर सकती है, हम उससे परे हैं, तब फिर आप का तप से क्या प्रयोजन ? आप कहें कि हम तो सभी में सम-भाव रखते हैं, वैसे ही क्रीड़ा के लिये करते हैं, तब आप यह स्त्री है, यह पुरुष है, ऐसा भेद-भाव क्यों करते हैं ? आत्मा में तो स्त्री, पुरुष का भेद-भाव नहीं है। वह तो निर्विकार है, फिर आप क्यों डरते हैं ?"

सूतजी कहते हैं--"शौनकजी ! शिवा के सम्मुख शिव कैसे जीत सकते हैं ? उन्होंने हँसकर कहा—"अच्छी बात है, तुम अपनी सखी सहेलियों को साथ ले आकर नित्य मेरी पूजा कर सकती हो।"

यह सुनकर हिमालय को तथा पार्वतीजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। अब तो नित्य ही पार्वतीजी अपनी सहेलियों के साथ शिव सेवा को समय से आने लगीं। वे विधिवत् शिवजी के पैरों का प्रक्षालन करतीं। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गंध, अक्षत, पुष्प, बिल्वपत्र, वनमाला, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल आदि से उनका पूजन करतीं। उनके स्थान में स्वयं झाड़ू बुहारी देतीं। गोबर से उसे लीपतीं, उस पर स्वस्तिक आदि बनातीं और नित्य सेवा पूजा करके अपने घर को चली जातीं।

शिवजी तो निर्विकार ही ठहरे। उनके मन में कभी स्वप्न में विकार होना सम्भव नहीं। पार्वतीजी भी विकार से परे नित्य शिव ध्यान परायणा हैं। इस प्रकार दोनों ही विशुद्ध भाव से समीप रहते थे, फिर भी किसी के मन में कोई कांक्षा नहीं थी।

पार्वतीजी की इतनी इच्छा थी कि सदाशिव मुझे सदा के लिये अपनी सहचरी, चिर सेविका स्वीकार कर लें।

इधर तो शिवा और शिव निर्विकार रूप से काल यापन कर रहे थे, उधर तारक नामक दैत्य उत्पन्न होकर देवताओं को पीड़ा पहुँचाने लगा। वह अपने तप और तेज से इतना पराक्रमी था कि संसार में कोई उसे जीत नहीं सकता था। उसके भय से भयभीत होकर सभी देवता ब्रह्माजी के पास गये ब्रह्माजी ने कहा—"देखो भैया! सुन लो मेरी सच्ची बात। तुम चाहें बुरा मानों चाहें भला, मैं तो दो टूक कहने वाला हूँ। वह असुर न मुझसे मरेगा, न विष्णु भगवान् से, न शिवजी से। हाँ, यदि शिव के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो जाय, तो वह इसे मार सकता है।"

सबने सुनकर माथा ठोंका और कहा—"शिवजी तो विकार शून्य हैं। विश्व विमोहिनी जगत् की सुन्दरियों में एकमात्र शिरोमणि भगवती पार्वती उनके समीप रहकर सब प्रकार से उनकी सभी सेवायें करती हैं, किन्तु उनके मन में कभी स्वप्न में भी काम की गन्ध नहीं उठती। ऐसे जितेन्द्रिय वासनाहीन शिव के पुत्र कैसे हो सकता है? फिर भी हम उद्योग करें।"

यह सब सोचकर देवताओं के राजा इन्द्र ने वसन्त, मलयानिल, रति आदि के सहित कामदेव को शिव समाधि भङ्ग करने भेजा। उनका तप नाश करने की इच्छा से कामदेव वहाँ गया, जहाँ पार्वती द्वारा सेवित शिव समाधि मग्न थे। कामदेव ने अपना सम्पूर्ण बल लगाया, किन्तु शिवजी पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। कामदेव ने पूर्ण शक्ति लगाकर शिवजी को अपने वश में करना चाहा, तो उन्होंने अपने तीसरे नेत्र से कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया।

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! यह तो आप बड़ी

शीघ्रता कर गये, शिव ने कैसे काम को भस्म किया ? यदि आप उचित समझें, तो इस कथा को विस्तार के साथ वर्णन कीजिये ?"

इस पर सूतजी बोले—"महाराज ! यह तो बहुत प्रसिद्ध कथा है, फिर भी मैं इसका वर्णन आगे श्री प्रद्युम्नजी के कथा प्रसंग में करूँगा। यहाँ तो आप इतने ही से संतोष करें कि शिवजी ने क्रोध करके काम को भस्म कर दिया।"

काम को जिस समय शिवजी ने भस्म किया, उस समय शिवा पार्वतीजी वहीं उपस्थित थीं। काम जिस समय दग्ध हुआ, उस समय शिवजी की मूर्ति भयंकर बन गयी थी। तीसरे नेत्र के खोलते ही एक बड़ा भयंकर महान् शब्द हुआ, जो दशों दिशाओं में भर गया। उस शब्द को सुनकर शैलकुमारी डर गयीं, वे भागकर अपने पिता के घर पहुँची, सब ने उन्हें सान्त्वना दी, किन्तु वे तो शिवजी को प्राप्त करना चाहती थीं, अतः माता-पिता की आज्ञा लेकर अरण्य में जाकर वे घोर तपस्या करने लगीं। उनके घोर तप के कारण एक ऐसी तपाग्नि-सी उत्पन्न हुई कि उससे तीनों लोक के जीव जलने से लगे। सभी मिलकर ब्रह्माजी के पास गये, ब्रह्माजी सबको लिये हुए विष्णु भगवान् के पास गये, भगवान् ने कहा—"देखो, भैया डरने की कोई बात नहीं। यह पार्वती की तपस्या की अग्नि है। तुम सब जाकर शिवजी से प्रार्थना करो कि पार्वतीजी के संग विवाह कर लें। गिरि राज कुमारी काली देवी शिव प्राप्ति के ही लिये तप कर रही हैं।"

सबने हाथ जोड़कर भगवान् से कहा—"महाराज ! हम और सब तो कर सकते हैं, किन्तु उन रुद्र मूर्ति शिव के समीप भूलकर भी नहीं जायँगे। उन्होंने कामदेव को भस्म कर दिया है। यदि हमें देखकर भी तीसरा नेत्र खोल दिया तो हम सब तो जय-जय सियाराम हो जायँगे।"

यह सुनकर भगवान् हँस पड़े और बोले—"अरे भैया,

भगवान् भूतपति तो भोलेनाथ हैं। वे स्तुति करते ही प्रसन्न हो जाते हैं। चलो, हम भी तुम लोगों के साथ चलते हैं।" यह कहकर भगवान् विष्णु ब्रह्मादिक सभी देवताओं को साथ लिये हुए शिवजी के समीप चले। मार्ग में उन्होंने तपस्या करती हुई, जगदम्बिका शिवा को देखा। सभी ने मन-ही-मन उनको प्रणाम किया और फिर शिवजी के समीप पहुँचे।

नमस्कार प्रणाम शिष्टाचार के अनन्तर भगवान् बोले—"भगवन्! हम सब आपका विवाह देखना चाहते हैं? हमें ऐसा वरदान दीजिये कि आपका विवाह हम सब बड़े उल्लास के साथ देख सकें।"

यह सुनकर शिवजी बोले—"भगवन्! विवाह के चक्कर में मुझे क्यों डालते हो? जान बूझकर दृढ़ रस्सियों से मुझे क्यों कसना चाहते हो, क्यों मेरे पैरों में लोहे की जंजीर पहिनाना चाहते हो, क्यों मुझे विष पिलाना चाहते हो, क्यों मुझे मोक्ष मार्ग से भ्रष्ट करने पर उतारू हो? जहाँ विवाह हुआ नहीं कि सब हेकड़ी भूल जाती है, ज्ञान, वैराग्य, वायु सेवन को चले जाते हैं। जहाँ कानों में छम्म-छम्म की ध्वनि पहुँची नहीं कि सब पढ़ा पढ़ाया चौपट हो जाता है। जहाँ खनखनाती हुई चूड़ियों वाले हाथों से परसा भोजन खाया नहीं कि फिर दूसरे के हाथ का भोजन अच्छा ही नहीं लगता। आदमी फिर परवश हो जाता है। अपनेपन को खोकर पराधीन हो जाता है। क्यों मुझे जान बूझकर गड्ढे में गिरा रहे हो?"

भगवान् हँसते हुए बोले—"आप तो सदा मुक्त हैं, आपको क्या बन्धन क्या मोक्ष? आप तो मोक्ष के दाता हैं। इन लम्बी-लम्बी जटाओं के ऊपर मौर बड़ा फबेगा। चन्द्रमा की चमक में, फूलों की मालाओं से ढका आपका मनोहर मुख मेरे मन को महा मादकर प्रतीत होगा। आप अपने लिये नहीं शैलसुता के ऊपर

कृपा करके विवाह कीजिये, वे आपकी प्राप्ति के लिये ही घोर तपस्या कर रही हैं। फिर आपके पुत्र के बिना तारक का बध हो नहीं सकता; अतः कृपा कीजिये, विवाह कर लीजिये, देखिये हमने भी तो विवाह किया है।"

शिवजी बोले—"आपकी तो महाराज ! लीला ही अपरम्पार है। आप तो विवाह करके सदा अविवाहित ही बने रहते हैं। मेरी इच्छा नहीं होती कि बैठे बिठाये एक पुछल्ला और बाँध लूँ, पर आप लोग नहीं मानते हैं, तो अच्छी बात है, कर लूँगा। करो सब ठीक-ठाक।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! शिवजी की स्वीकृति पाकर श्रीविष्णु तथा ब्रह्मादि देव अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और वे सब मिलकर बड़े प्रेम से, अत्यन्त ही उल्लास के साथ शिव-विवाह करने का उद्योग करने लगे।"

छप्पय

मैना सेवा करी सुतासम सती देह में।
प्रकटीं तनया होय मातु गिरिराज गेह में॥
चन्द्रकला सम बढ़त निरखि पितु अति हरषाये।
विरही शिव तप हेतु पास गिरिके इत आये॥
सुनत शैल सेवा करन, सुता सहित शिव सन गये।
कन्याकूँ कैंकर्य हित, गिरि अरपी हरषित भये॥

शिव-पार्वती विवाह

[५१५]

तमेव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिमम्बिका।
अनन्यभावैकगतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम् ॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, ७ अ०, ५६ श्लो०)

छप्पय

शिव योगी निष्काम विकार न मनमहँ आवे।
इत तारक इक असुर प्रकटि सब सुरनि सतावे॥
शिव सुत मारे जाहि सुरनि मिलि निश्चय कीन्हों।
भेज्यो शिव ढिँग काम छार हरने करि दीन्हों॥
शिवहित तप गिरिजा करहिँ, ताप युक्त सब जन भयो।
आशुतोष सन्तुष्ट है, मनवांछित फल दे दयो॥

जो वस्तु जितने ही श्रम से प्राप्त होती है, उतना ही उसकी प्राप्ति में सुख मिलता है। सहसा अनायास बिना कष्ट उठाये, बिना तप के जो फल प्राप्त हो, उसमें उत्कण्ठा जनित आनन्द नहीं, उल्लास नहीं, चित्त की एकान्तता नहीं। धैर्य और संयम

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! श्री जगदम्बिका देवी ने इस जन्म में भी अनन्य भाव से भजने वालों की एक मात्र गति उन अपने परम प्रियतम भगवान् शङ्कर को ही पति रूप से प्राप्त किया, जैसे प्रलय काल में लीन हुई शक्ति फिर प्रलयान्त में पुरुष का ही आश्रय ग्रहण करती है।"

से चिरकालीन आराधना के पश्चात् आशा और निराशा की चपेटों में बहते-बहते, एक-एक क्षण को युग-युग के समान बिताते-बिताते, उसका सोते-जागते, उठते-बैठते ध्यान करते-करते, तीव्र साधना के अनन्तर जो फल प्राप्त होता है, वह स्वयं मधुर होने पर भी चिरकालीन आकांक्षा उसकी मधुरता को और भी बढ़ा देती है, उसके स्वाद में दिव्यता भर देती है। तभी हमारे यहाँ तप का इतना माहात्म्य है। क्षुद्र विकार के वशीभूत मत हो जाओ। इन्द्रियों को चञ्चलता के अधीन मत कर दो। सहसा विवाह मत कर लो। पहिले सगाई करो, दोनों ओर से उत्कण्ठा बढ़ने दो। रात्रि के तारों को गिनते गिनते पहाड़ जैसी निशाओं को समाप्त होने दो। जगत् को उसी के रूप में देखने का अभ्यास होने दो। साधना के अनन्तर जो साध पूरी होगी, वह दिव्य होगी, उसकी मादकता शीघ्र नष्ट न होगी। इसीलिये शिव स्वयं विरही बनते हैं, दूसरों को विरहाग्नि में तपाते हैं, तप कराते हैं, उत्कण्ठा बढ़ाते हैं और फिर स्वयं ही सन्तुष्ट होकर वरदान देते हैं। क्रीड़ा है, माया है, कौतुक है, गोल-माल है, जो है सो है, उस अब क्या कहें ? कुछ कहते नहीं बनता।

हाँ, तो शिवजी की स्वीकृति की बात सुनकर शौनकजी सूतजी से पूछने लगे—"सूतजी ! शिवजी के चरित्र यथार्थ में बड़े ही सुखद बड़े ही आनन्द देने वाले तथा मन को हरने वाले हैं। कैसी शिवजी की बानि है, अपने आश्रितों के लिये, भक्तों के लिये स्वयं भी विरही बन जाते हैं। जो उन्हें जिस भाव से भजता है, वे उसी भाव में भावित हो जाते हैं। किसी कारण से रुष्ट भी होते हैं, तो क्षण में सन्तुष्ट हो जाते हैं, इसीलिये उन्हें आशुतोष कहते हैं। आप उनके अग्रिम चरित्र को सुनाइये। भगवती पार्वती देवी का पशुपति ने पाणिग्रहण किस प्रकार किया ? इसे आप सरसता के साथ सुनावें।"

यह सुनकर सूतजी बोले--"भगवन्! मुझमें कहाँ इतनी शक्ति है कि शिवचरित्र को यथावत् सरसता का सम्पुट लगाकर सुना सकूँ। यथामति कहकर अपनी वाणी को पवित्र करूँगा। शिवचरित्र रूपी रस का संसर्ग करके अपनी रसना को सार्थक बनाऊँगा। हाँ, तो देवताओं को स्वीकृति देने पर भी शिवजी सहसा विवाह करने को उत्सुक नहीं हो गये। उन्होंने शिवा की उत्सुकता को और भी बढ़ाया, उनके निश्चय को और भी दृढ़ किया। पति के प्रति उत्पन्न निष्ठा की और भी वृद्धि की। उन्होंने सप्तर्षियों को बुलाकर उनसे कहा—"आप लोग जाकर गिरिराज कन्या पार्वती की परीक्षा लें कि उसका निश्चय दृढ़ है या उसमें किसी भी कारण से हेर-फेर हो सकता है।"

शिवजी की आज्ञा पाकर सप्तर्षि शैलकुमारी शिवा के समीप शीघ्र ही पहुँचे। उन्हें घोर तपस्या में प्रवृत्त देखकर पूछने लगे—"पुत्री! तुम इतनी सुकुमारी कोमलाङ्गी होकर क्यों तपस्या कर रही हो?"

उन आये हुए सप्तर्षियों को देखकर हिमालय-तनया पार्वतीजी ने उन सबका स्वागत-सत्कार किया, नमस्कार करके विनीत वचनों में बोलीं—"महर्षियो! आपका स्वागत है। मैं गिरिराज हिमालय की पुत्री हूँ, इसीलिये मुझे लोग पार्वती कहते हैं। देवर्षि भगवान् नारद के उपदेश से मैं भगवान् सदाशिव भोलेनाथ को अपना स्वामी बनाने के संकल्प से तपस्या कर रही हूँ।"

सप्तर्षियों ने कहा—"बेटी! तुम किस कौतुकी के चक्कर में फँस गई? नारद की बात का क्या विश्वास? वह तो सबको बाबाजी बनाने को घूमता रहता है। तुम्हें झूठ-मूठ ऐसी पट्टी पढ़ा दी कि जीवन भर विवाह न हो, तुम क्वारी ही बनी रहो, वैरागिनी बन जाओ। तुम ही सोचो शिव के मन में कभी भूल-कर भी कामवासना उत्पन्न नहीं होती, जिन्होंने विश्व विजयी

कामदेव को क्रोध करके क्षण भर में भस्म कर दिया, वे तुम्हें क्यों वरण करने लगे। विवाह मनुष्य किसी कामना से करता है। जो निष्काम हैं, जिन्हें इहलोक परलोक की कोई इच्छा नहीं है, वे विवाह बन्धन में व्यर्थ क्यों अपने को बाँधने लगे? विवाह तो दृढ़ बन्धन है। योगेश्वर शिव जो जीवमात्र को मुक्ति देने वाले हैं, वे इस माया जाल में न फँसेंगे। अतः बेटी हमारी बात मानों, हम तुम्हारे हित के लिये कहते हैं। सम्पूर्ण सुखों के उपयोग योग्य अपने इस सुन्दर सुकुमार यौवनावस्था प्राप्त शरीर को व्यर्थ ही तपस्या के क्लेशों से कृश बना रही हो? तुम्हारा मनोरथ असम्भव है। वह किसी भी दशा में पूरा न हो सकेगा।

दृढ़ता के साथ शिवा ने कहा—"न हो सकेगा, तो मैं इसे तपस्या करते-करते भस्म कर दूँगी।"

सूखी हँसी हँसते हुए सप्तर्षियों ने कहा—"इससे क्या लाभ? यह तो आत्महत्या हुई, जो महापाप है। तुम अभी बच्ची हो, तुम्हें हित अहित का अभी ज्ञान नहीं है। नारद के वचनों पर व्यर्थ विश्वास करके तुम अपनी विवाह की अवस्था बिता रही हो। बेटी! इस हठ को छोड़ो। मान लो, शिव ने तुमसे विवाह कर भी लिया, तो तुम्हें वहाँ क्या सुख मिलेगा? उनके यहाँ न घर है न द्वार। पहाड़ की गुफा में रहना पड़ेगा। उन पर न वस्त्र है न बिस्तरा, खाल बिछाकर बरफ में पड़ना पड़ेगा। उन पर न विमान है न गरुड़, एक डूँडा-सा बैल है। बैल की पीठ पर चढ़ना वैसे ही पाप है। उस पर चढ़कर घूमना पड़ेगा। उनके माता-पिता भी नहीं हैं। अकेली रहोगी, वे जब आक, धतूरा, भाँग चढ़ाकर समाधि में मग्न हो जाते हैं, तो फिर वे किसी की ओर देखते तक नहीं। साँस भी नहीं लेते, किससे बात-चीत करोगी, कैसे मन बहलाओगी? पहिले तो वे किसी भी प्रकार विवाह करेंगे नहीं, मान लो, कर भी लिया तो दुःख-ही-दुःख है

शिवजी बहुत सुन्दर भी नहीं, शृङ्गार भी वे विचित्र करते हैं; सिंह का चर्म, चिता की भस्म, मुण्डों की माला, सर्पों का मुकुट, सर्पों के ही आभूषण। किसी सर्प ने फुफकार मार दी तो वैसे ही डर जाओगी। उनकी कलाइयों में, भुजाओं में, गले में, हृदय में सर्वत्र काले-काले विषधर साँप चिपटे रहते हैं। चक्कर में फँस गईं तुम ? भोली बच्ची।"

पार्वतीजी ने उपेक्षा-पूर्वक दृढ़ता के स्वर में कहा—"अब महाराज ! जैसे चाहो तैसे समझो, फँस गई सो फँस गई। इस चक्कर में फँसा हुआ फिर निकल नहीं सकता। प्रेम का बन्धन बड़ा दृढ़ होता है। प्रेमी में कभी अवगुण दिखाई देते ही नहीं। प्रेम तो ऐसा काँच है कि जहाँ वह आँखों पर लगा कि सबको अपने ही रूप का बना लेता है। अब तो कोई दूसरा उपाय भी नहीं।"

सप्तर्षियों ने कहा—"उपाय क्यों नहीं। हम उपाय बताते हैं। तुम विष्णु भगवान् से अपना विवाह करने का निश्चय करो। इस सम्बन्ध को करा देने का भार हमारे ऊपर रहा। विष्णु भगवान् सब देवताओं में श्रेष्ठ हैं, कितने सुन्दर हैं। शिवजी के तो तीन नेत्र, पाँच मुख, बड़ी-बड़ी जटायें, कानों में ये मोटे कुण्डल, लाल-लाल नशीले नेत्र, किन्तु विष्णु भगवान् के कमल के सदृश वर्ण हैं। शिवजी तो चन्द्रमा की तरह भूरे-भूरे से हैं। विष्णु भगवान् की काली-काली अलकावली कितनी प्यारी लगती हैं। मुख सौन्दर्य का उद्गम है। उनका मुकुट कितना मनोहर है। कानों में कुण्डल झलमल-झलमल करते रहते हैं। वे गजचर्म को छूते भी नहीं। सुन्दर महीन रेशमी पीताम्बर पहिने रहते हैं। चारों विशाल भुजाओं में सदा शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म को धारण किये रहते हैं। सदा बने ठने, सजे बजे, रहते हैं, शृङ्गार उन्हें अत्यन्त प्रिय है। अलङ्कार उनको अत्य-

धिक भाते हैं। उनके ऐश्वर्य का क्या पूछना ? लक्ष्मी उनके पैर पर लोटती रहती हैं। तुम यह मत सोचना—लक्ष्मी तुमसे सौतिया डाह करेगी। वह तो तुम्हारी दासी बनकर रहेगी। उनका गरुड़ बहुत वेग से उड़ता है। तुम्हें पीठ पर बिठाकर सैर-सपाटे को ले जाया करेगा। इसलिये तुम उस भभूतिया शिव का संकल्प छोड़ो और सर्वगुण के निधान, ऐश्वर्य के स्वामी, सुख के सागर, सौन्दर्य के साकार स्वरूप, सुरों के सर्वेश्वर उन वृहद् यश वाले विष्णु को अपना वर बना लो। उनकी दुलहिन बनने से तुम जगन्माता बन जाओगी। हम बड़े बूढ़े हैं, हमने अपनी ये लम्बी-लम्बी दाढ़ियाँ धूप में सफेद नहीं की हैं। इनकी सफेदी में अनन्त अनुभव भरे हैं। तुम अभी बच्ची हो, बुद्धि की कच्ची हो, हठ की सच्ची हो। हमारी बात मानों और इस व्यर्थ की हठ को अभी तिलांजलि दे दो। बोलो, कुछ बात समझ में आई ?"

सब सुनकर सती रूपा शिवा बोलीं—"महर्षियो ! जो वस्तु जिसके मन में बस जाती है, उसमें उसका अपनापन हो जाता है। अपनी वस्तु सबको संसार में अत्यधिक प्यारी होती है। किसी का कुरूप, काना, कुत्सित, कुपुत्र भी क्यों न हो; किन्तु दूसरे के सुन्दर, सर्वाङ्ग पूर्ण, सुशील, सर्वगुण सम्पन्न सुत से उसकी सन्तुष्टि नहीं होती। उसका ममत्व अपने ही पुत्र के प्रति होता है। चातक स्वाति बूँद से ही सन्तुष्ट होता है, कुमुदिनी चन्द्र को ही देखकर खिलती है। फिर चाहे वह पाला डालकर उसे झुलसा ही क्यों न दे। मेरे मन ने मदन-दहन करने वाले सदाशिव को ही कसकर पकड़ लिया है। विष्णु भगवान् के पाद-पद्मों में श्रद्धा सहित मैं प्रणाम करती हूँ, किन्तु मैं शिव के अतिरिक्त किसी देव की ओर दृष्टि उठाकर देख भी नहीं सकती। काम को उन्होंने दहन कर दिया हो या उसे मित्र बना लिया हो।

दोनों ही दशा में वे एक से हैं। वे तो कभी काम के वश में हुए ही नहीं। मेरा मन रूपी मधुप उन्हीं के पाद पद्मों की पराग में लोटने के लिये उत्सुक हो रहा है। अब आप इस विषय में मुझसे एक भी शब्द न कहें। मेरा निश्चय अटल है। वह किसी प्रकार टल नहीं सकता।"

पार्वतीजी के ऐसे दृढ़ निश्चय को देखकर सप्तर्षि अत्यधिक सन्तुष्ट हुए और प्रसन्न होकर बोले--"देवि तुम धन्य हो! तुम्हारी एक निष्ठा श्लाघनीय है, तुम्हारा शिव सम्बन्धी अनुराग अनुकरणीय है। हम तुम्हें आशीर्वाद देते हैं--तुम्हें अवश्य ही भगवान् विश्वनाथ शिव सहचरी रूप में वरण करेंगे। तुम्हें वे अवश्य ही पति रूप में प्राप्त होंगे।"

इतना कहकर सप्तर्षि शिवजी के समीप चले गये और पार्वतीजी फिर अपनी तपस्या में लग गईं। सप्तर्षियों के मुख से शिवा का सब समाचार सुनकर सदाशिव को परम प्रसन्नता हुई। अब उन्होंने स्वयं छद्मवेष से जाकर तपःपूता गिरिराज किशोरी के प्रेम की परीक्षा करनी चाही। वे स्वयं एक जटिल वैरागी का वेष बनाकर तपस्या में निरत भगवती पार्वती के समीप पहुँचे। दूर से ही अपने आश्रम की ओर आते हुए अभ्यागत को देखकर जगनन्दिनी उठकर खड़ी हो गईं। पाद्य, अर्घ्य आदि से उन जटिल तापस की विधिवत् पूजा की। भगवती की पूजा को स्वीकार करके उन्होंने पार्वतीजी का परिचय पूछा।

सरलता के साथ शिवा ने सभी समाचार सत्य-सत्य सुना दिया। सुनकर वह जटिल जोरों के साथ हँस पड़ा।

देवी ने पूछा—"भगवन्! आप हँसे क्यों?"

उपेक्षा के स्वर में जटिल तापस ने कहा—"मैं तुम्हारे भोलेपन पर हँसा। समस्त शैलों के अधीश्वर की पुत्री होकर भी तुम में इतनी बुद्धि नहीं। तुम ऐसे व्यक्ति को पति बनाने को घोर तप

कर रही हो, न जिसकी कोई जाति, न आचार-विचार, जो सभी धर्मों से रहित, गुण हीन, परिवार हीन, नंग धड़ंगा है। अरे तुम साधारण स्त्री तो हो नहीं, विश्व की समस्त स्त्रियों में रत्न हो। साधारण पिता की पुत्री भी नहीं, राज राजेश्वर गिरिराज की पुत्री हो। तुम्हारे पिता कोई योग्य वर ढूँढ़कर उसके साथ तुम्हारा विवाह कर देंगे। तुम्हें क्या सूझी है ? इतने सुन्दर सुकुमार देवता, नग, गन्धर्व आदि को छोड़कर शिव को पति बनाना चाहती हो। यह तो ऐसी ही बात हुई कि कोई कामधेनु के दूध को छोड़कर आक का दूध पीना चाहे, अथवा गङ्गाजल को छोड़कर क्षुद्र सड़े गड्ढे का मलिन जल पीने की इच्छा करे। चन्द्र की चाँदनी को छोड़कर जुगुनू के प्रकाश की कौन इच्छा करेगा ? मणि को छोड़कर कौन बुद्धिमान् साधारण काँच के टुकड़े को चाहेगा ? मलयागिरि के कर्पूर मिश्रित चन्दन को छोड़कर सड़ी कीच को कौन लगाना चाहेगा ? अपने सुन्दर घर को छोड़कर बीहड़ वन में कौन रहना चाहेगा ? कोकिल के शब्द को छोड़कर गदहे के शब्द को कौन सुनने की इच्छा करेगा। हलुआ पूड़ी रसगुल्ला आदि पदार्थों को छोड़कर सूखे सत्तुओं के गोलों को अँगूठे के सहारे कौन निगलना चाहेगा ? कमल, गुलाब, चम्पक आदि के सुगन्धित पुष्पों को छोड़कर दुर्गंधिन्युक्त पुष्पों को कौन सूँघना चाहेगा ? सुन्दर ताल स्वर और लययुक्त गायन को छोड़कर बेसुरे पागलों के प्रलापों को सुनने से कौन प्रसन्न होगा ? देवि ! मेरी बात मानों और उस अनुचित मनोरथ को छोड़कर सुखपूर्वक पिता के घर जाकर रहो।"

भगवती पार्वतीजी ने पूछा—"हे तपस्वी ! आप मेरे मनोरथ को अनुचित क्यों बता रहे हैं ?"

जटिल महोदय बोले—"देवि ! मैं शिवजी को जानता हूँ। इतना जानता हूँ, जितना उन्हें तुम भी नहीं जानती हो। तुम्हें

किसी धूर्त ने बहका दिया है। तुम सोचो, जिसका वय, कुल, शील, सदाचार, रूप तथा सम्पत्ति समान होती है, उनसे ही विवाह सम्बन्ध होता है। तुम अभी नई अवस्था की युवती हो, शिवजी पुरातन बूढ़े बाबा हैं, तुम सत्कुल में उत्पन्न राजकुमारी हो, उनके कुल का कुछ पता ही नहीं। तुम परम शीलवती हो, शिव महा उद्यत परम क्रोधी हैं। तुम कैसी पवित्रता से सात्त्विक पूजा कर रही हो, कैसा सुन्दर तुम्हारा सराहनीय सदाचार है। शिव तो आचारहीन हैं। हड्डियों के आभूषण, मुण्डों की माला, चिता की भस्म, रक्त से सने गज का चर्म—यही उनका आचार है। उनके इस कदाचार के कारण ही तो दक्ष ने उनका और उनके सम्बन्ध से पूर्व जन्म में तुम्हारा बहिष्कार कर दिया था। तुम कितनी सुन्दरी हो, तुम्हारे अङ्ग प्रत्यङ्ग से सौन्दर्य की किरणें फूट-फूटकर इस सम्पूर्ण वन्य प्रदेश को आलोकमय बनाये हुए हैं। शिवजी की सम्पत्ति को सभी जानते हैं। एक मरखना बैल, डमरू—यही उनकी सम्पत्ति हैं, भीख माँगकर खप्पर में खाते हैं। तुम राज राजेश्वर की प्यारी, दुलारी, सुख में पाली एकलौती पुत्री हो। इस हठ को छोड़ो और किसी दूसरे को अपना पति बना लो।"

अब तो पार्वतीजी को क्रोध आ गया। वे बोलीं—"तू साधु नहीं, कोई दम्भी है। तैंने यह कपट का वेष बना रखा है। अरे भाग्यहीन! तू शिव के ऐश्वर्य को क्या जाने? वे ही तो विश्व ब्रह्मांड के ऐश्वर्य के एकमात्र अधिपति हैं।"

जटिल तपस्वी धैर्य के साथ बोला—"देवि! क्रुद्ध मत हो। बाल-चांचल्य के कारण मेरा अपमान मत करो। मैं तुम्हारे हित की ही बात कह रहा हूँ। देखो, जब तक दुलहा दुलहिन में साम्यता नहीं होती तब तक प्यार ही नहीं बढ़ता। बिना प्यार के दाम्पत्य जीवन नरक के समान हो जाता है। शिव में और तुममें

सभी बातें असमान हैं। देखो, तुम्हारी काली-काली अलकावली, एड़ी तक लटकती हुई नागिन के समान वेणी कितनी सुन्दर, कितनी आकर्षक तथा लुभावनी है। इसके विपरीत शिवजी के जटा-जूट उस घास वाले वन के समान है, जिसमें अनेकों पक्षियों ने घोंसले बना लिये हों। उनमें गङ्गाजी भी विचरती रहती हैं, साँप भी घूमते रहते हैं। वे सबकी सब जटायें क्या हैं राक्षसों के झुण्ड हैं। तुम्हारे पूर्व जन्म के पिता के यज्ञ को विध्वंस करने के लिये शिवजी ने एक जटा से ही सुमेरु के समान वीर-भद्र को पैदा कर दिया था। तुम्हारा मस्तक कितना विस्तृत है, उनके मस्तक पर टेढ़े चन्द्रमा ने अपना अधिकार जमा लिया है, इससे वह भी वक्र बन गया है। तुम्हारे कानों में ये कर्णफूल कितने कमनीय प्रतीत होते हैं ? शिवजी के कान तो फटे हुए हैं। इसीलिए वे कनफट्टे कहलाते हैं, उनमें काँच के मोटे-मोटे कुंडल पड़े रहते हैं। तुम्हारी आँखें मृगी के समान कितनी भोली और प्यारी-प्यारी हैं। शिवजी के दो के स्थान पर तीन नेत्र हैं, वे सदा लाल-लाल बने रहते हैं। तुम्हारा मुख कमल से भी करोड़ों गुना कोमल, चन्द्रमा से भी असंख्यों गुना प्रकाशवान् तथा करोड़ों रतियों के सौन्दर्य को फीका बनाने वाला है। शिवजी के एक नहीं पाँच-पाँच मुख हैं, वे भी छोटे-मोटे नहीं पहाड़ के समान हैं, जिनमें वे जब चाहते हैं, विश्व ब्रह्माण्ड के समस्त प्राणियों को निगल जाते हैं। मोतियों के समान, दाडिम के दानों के समान, तुम्हारी कैसी मन मोहक उज्जवल दंतावली है। शिवजी के दाँत तो हल की फार के समान तीक्ष्ण है। उन दाँढ़ों के भीतर जो पड़ जाता है, उसे ही चबा जाते हैं। तुम्हारा उन्नत और पीन पयोधरों से युक्त विशाल वक्षस्थल है, जिसके ऊपर नाना मणि मुक्ताओं और सुवर्णों के हार शोभा देते हैं। शिवजी का वक्षःस्थल चिता भस्म से सना मुण्डों की अपवित्र माला से

मण्डित रहता है। तुम्हारे मृणाल के समान कितने कोमल कमनीय करद्वय हैं। शिवजी के दस-दस हाथ हैं, जिनमें डमरू, धनुष, खड्ग, बाण, कपाल आदि भयावनी वस्तुएँ लिये रहते हैं। यद्यपि इस समय तुम वल्कल वस्त्र पहिने हो, फिर भी तुम्हारे, भरे हुए पुष्ट जघन महीन से वल्कल से कितने सुन्दर लगते हैं। शिवजी तो गज चर्म ओढ़े सूखे-साखे से उन्मत्तों की भाँति घूमते रहते हैं। तुम्हारे चरण कितने कोमल हैं, कितने सुन्दर हैं, शिवजी के चरण क्या हैं—पशुओं के खुर हैं। इतनी बड़ी-बड़ी बिवाइयाँ फटी रहती हैं कि उनमें बहुत से सर्प बैठे रहते हैं। देखने में विरूपाक्ष, बात करने में क्रोधी, आचार में हीन, मोह ममता से शून्य, स्नेह से रहित ऐसे शिव के साथ तुम विवाह करना चाहती हो। इससे मैं समझता हूँ, तुम्हारा भाग्य फूट गया है। तभी तो तुम्हें ऐसी कुबुद्धि पैदा हो गई, तभी तो अशुचि, आचरणहीन, अघोरी शिव के साथ विवाह करने की इच्छा रखती हो।"

यह सुनकर शिवा अत्यन्त कुपित हुईं। उनकी इच्छा हुई, कि इस शिव निन्दक की अभी जिह्वा निकलवा लूँ; किन्तु ब्राह्मण समझकर वे ऐसा न करा सकीं। उसे बार-बार रोकती रहीं। कानों में उँगली दिये रहीं। शिव निन्दा करना तो दूर की बात है, शिव निन्दा सुनना भी महान् अपराध है, इसलिये वे कुपित होकर उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र जाने लगीं।

तब शिवजी समझ गये कि उनकी मेरे प्रति अनन्य, अव्यभिचारिणी भक्ति है। भवानी पति भक्ति ही के तो अधीन हैं। तुरन्त उस जटिल के छद्म वेष को छोड़कर वे अपने साक्षात् सदाशिव के रूप में प्रकट हो गये और हँसते हुए बोले—"देवि मैं तुम्हारे प्रेम को ही देखने आया था, तुम मेरी अनन्य भक्ता

हो, मेरे में तुम्हारी प्रगाढ़ अनुरक्ति है। तुम तो मेरी हो ही, मैंने तुम्हें स्वीकार कर लिया। अब चलो, चलें कैलास को।"

अपने सम्मुख अपने इष्टदेव को देखकर पार्वतीजी अवाक् रह गईं। हर्ष, विस्मय, आनन्द, लज्जा आदि सभी भावों के एक साथ उदय हो जाने से वे कुछ काल तक हक्की-बक्की-सी खड़ी

रहीं। फिर विधिवत् शिवजी की पूजा करके हाथ जोड़े हुए विनीत वचनों से कहने लगीं—"देव ! मैं सदा से आपकी हूँ, सदा आपकी ही बनकर रहूँगी। किन्तु अब जब मैंने यह रूप धारण किया है तो मुझे उसी रूप के अनुरूप ही वरण कीजिये। ऐसे मुझे ले जाने से आपकी भी अपकीर्ति होगी, मेरे पिता का भी अपवाद फैलेगा। मैं अभी कुमारी हूँ, कुमारी को देने का—उसका विवाह करने का—अधिकार उसके पिता को ही होता है। आप मेरे पिता के समीप जाकर मुझे माँगिये। वे आपके माँगने पर मना नहीं करेंगे। जब वे मुझे दे दें, तो फिर आप मेरे साथ लौकिक वैदिक विधि के साथ साङ्गोपाङ्ग विवाह करें। पहिले जन्म में आपने न देवताओं का न ग्रहों का पूजन करने दिया, इसी से हम दोनों को इतना विरह दुःख उठाना पड़ा। अब के ऐसा न हो, अब के आप सबका पूजन कराके विधि विधान पूर्वक मेरा पाणिग्रहण करें।"

शिवजी ने कहा—"मैं हाथ तो किसी सम्मुख पसारूँगा नहीं। याचना करना-किसी से माँगना-यह सबसे नीच कर्म है।"

पार्वती ने कहा—"महाराज ! आपके लिए क्या ऊँच-नीच ? आपकी तो यह क्रीड़ा है। इसलिये क्रीड़ा के लिये मेरा आग्रह मानकर आप इस कार्य को अवश्य करें।"

सदाशिव तो सेवकों की इच्छा को पूर्ण किया ही करते हैं, अतः उन्होंने स्वीकार कर लिया। इतनी ही देर में सहसा शिवजी वहाँ के वहीं अन्तर्धान हो गये। पार्वतीजी को परम प्रसन्नता हुई। वे सफल मनोरथ होकर अपने पिता के भवन में लौट आयीं। अपनी पुत्री को बन से लौटते देखकर माता-पिता ने अत्यधिक प्रसन्नता मनाई, उत्सव किया गया, विविध भाँति के बाजे बजाये गये, अत्यन्त मूल्यवान् वस्तुओं के दान दिये गये। जब सती ने आकर अपने माता-पिता से शिवजी की

प्रसन्नता का वृत्तान्त कहा तब दोनों को बड़ी प्रसन्नता हुई। यह बात निश्चित हो गयी कि शिवजी के साथ पार्वतीजी का विवाह होगा; किन्तु शिवजी तो बड़े कौतुकी ठहरे, उन्होंने एक नई लीला रची।

देवताओं ने जब सुना कि हिमालय अपनी कन्या का शिवजी के साथ विवाह करेंगे, तब तो उनकी चिन्ता का ठिकाना नहीं रहा। शिव माया से मोहित होकर वे विपरीत बातें सोचने लगे। उन्होंने सोचा--"साक्षात् विश्वनाथ शम्भु को कन्यादान करके हिमालय तत्काल मुक्त हो जायगा। उसका स्थावरपन नष्ट हो जायगा। हिमालय के नष्ट होने से पृथ्वी नष्ट प्रायः हो जायगी, यज्ञ भी न होंगे, हमें भाग भी नहीं मिलेगा, हम तो भूखे मर जायँगे। इसलिये किसी प्रकार शिव पार्वती के विवाह को रोकना चाहिये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! स्वार्थी लोग बहुत दूर तक की सोचते हैं। वे संसार का कर्ता अपने को ही मान बैठते हैं, और अपने व्यर्थ के कल्पित स्वार्थ के लिये दूसरों के अच्छे कार्यों को नष्ट करने की चेष्टा करते हैं। देवताओं ने अपना अभिप्राय अपने गुरु वृहस्पति को सुनाया और प्रार्थना की—"आप जिस किसी प्रकार जाकर हिमालय और मेना के सम्मुख शिव-निन्दा करके इस विवाह को रोकें।"

यह सुनकर कान बन्द करते हुए वृहस्पतिजी ने उन्हें डाटते हुए कहा—"तुम लोग बड़े स्वार्थी हो। भाग जाओ यहाँ से! सावधान! फिर ऐसी बात मुझसे कही तो, धूर्त कहीं के? जो जिह्वा शिव-निन्दा का एक शब्द भी उच्चारण करे, उसे मैं तत्क्षण काटकर फेंक देना ही श्रेयस्कर समझता हूँ।" देवताओं के सम्पूर्ण मनोरथ विफल हुए। वहाँ अपनी दाल गलते न देखकर ब्रह्माजी के पास पहुँचे। वे तो बड़े बूढ़े ही ठहरे, प्रेम से बोले--"देखो,

भैया। मुझसे तो यह काम होगा नहीं; मेरे वश के बाहर की बात है।"

देवताओं ने कहा--"अब हम और कहाँ जायँ ? आप ही तो हमारे एकमात्र आश्रय हैं। अब आप ही कोई उपाय बतावें।"

ब्रह्माजी बोले--"हाँ उपाय मैं बता दूँगा। संसार में कोई शिष्ट सम्माननीय धार्मिक पुरुष शिव-निन्दा नहीं करेगा। तुम शिवजी की शरण में जाओ। वे शरणागतवत्सल हैं। अपनी निन्दा वे अपने आप करेंगे। यदि अपनी निन्दा करने से दूसरों का स्वार्थ सधता हो, तो बुद्धिमान् पुरुष को अपनी निन्दा स्वयं कर देनी चाहिये। इससे उसे पुण्य होता है। निन्दा कराने वाले को पाप लगता है। इस काम को शिवजी ही कर सकते हैं।"

देवता तो स्वार्थ में अन्धे हो रहे थे। स्वार्थी दोष तो देखता नहीं। देवता शिवजी के पास पहुँचे और वे लोग दूर से ही लम्बी दण्डवत् करने लगे। स्वार्थी लोग बिलैया-डंडौत करें, तो समझना चाहिये, इनका कोई बड़ा भारी स्वार्थ है। सर्वज्ञ शिवजी तो सब समझते ही थे। हँसकर बोले—"देवताओ ! आज तो बड़ी लम्बी डण्डौत झुका रहे हो। बोलो, तुम्हारा कौन-सा काम मैं करूँ ?"

देवताओं ने हाथ जोड़कर अपना अभिप्राय कहा। सुनते ही शङ्करजी हँसकर बोले—"यह कौन-सी बड़ी बात है ? हम विवाह करने को उतावले थोड़े ही हो रहे हैं। ब्रह्मा, विष्णु और तुम सब मिलकर ही हमारे गले में रस्सी डाल रहे हो, वह जड़ हिमालय की भोली-भाली कन्या व्यर्थ की हठ कर रही है; इसी लिए हमने बेमन से कह दिया था, हम जाकर ऐसी-ऐसी निन्दा करेंगे कि इसकी माँ खटपाटी लेकर पड़ जाय। मेना और हिमालय के घर में इसी बात पर कलह हो जाय ?"

अब क्या था ? शिवजी ने ज्योतिषी का वेष बनाया। बड़े-

बड़े तिलक छापे लगाये। रेशमी दुपट्टा ओढ़ा, पीरी पाग पहिन कर, स्फटिक की माला सटकाते हुए, बार-बार—'नारायण! नारायण!' कहते हुए हिमालय की सभा में उस समय पहुँचे, जब वे अपने विशेष आत्मीय के साथ सुख से बैठे थे। पार्वतीजी उनके साथ विराजमान् थीं। दूर से ही तिलकधारी ब्राह्मण देवता को देखकर हिमालय ने शास्त्र विधि से उनका पूजन किया और आने का कारण पूछा।"

छली ज्योतिषी देवता बोले—"यह लड़की तो आपकी ही है न?"

लड़की तो समझ गई थी, ये छलिया शिव ही हैं, नया कौतुक करने आये हैं।

हाथ जोड़कर हिमालय ने कहा—"हाँ महाराज, मेरी ही बच्ची है। इसका हाथ देखिये।"

ज्योतिषी बाबा पिता के सामने ही पार्वती का पाणिग्रहण करते हुए बड़े ध्यान से उनकी रेखायें देखने लगे। पार्वतीजी का तो हृदय बाँसों उछल रहा था, सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो गया था। प्रियतम के स्पर्श से वे आत्म विस्मृत बनी हुई थीं। बूढ़ा ज्योतिषी हाथ को और आँखों तक ले गया मानों उसे कम दीखता है। देख-दाखकर बोले—"राजन्! मैं सब समझ गया। आपने जो निश्चय किया है; वह अच्छा नहीं।"

कुतूहल के साथ गिरिराज ने कहा—"महाराज! मैंने क्या निश्चय किया है?"

ज्योतिषी बाबा बोले—"यही कि इस भोली-भाली बच्ची को एक निर्गुण, कुलहीन, सदाचार रहित, कपाली, अशुचि, अघोरी, बूढ़े, जटाधारी, रूखे स्वभाव के क्रोधी, भिखारी, घर बार से रहित, नङ्गे, विषभक्षी, भभूतिया शिव को देना चाहते हैं। यह आपका इस फूल के समान भोली-भाली बच्ची के साथ

घोर अन्याय है। उस निर्गुण, नीरस, निराकार शिव के साथ यह सरला बालिका बताइये क्या सुख पावेगी।" इतना कहकर और अपनी सटकिया उठाकर शैलानी शिव शैल के समीप से सट से सटक गये। अपनी दक्षिणा की भी चिन्ता नहीं की। वे दक्षिणा के लोभ से तो आये ही नहीं थे, उन्हें तो कलह का बीज बोना था। लोग लुगाई में लड़ाई लगानी थी, सो उनका तीर लक्ष्य पर ही लगा। परदे में बैठी-बैठी मेना सब सुन रही थीं, ज्योतिषी के चले जाने पर मेना ने पूछा--"कालिका के कक्कू! ज्योतिषी बाबा क्या कहते थे?"

उपेक्षा के स्वर में हिमालय ने कहा—"कहते थे अपना सिर, यही कुछ दान दक्षिणा के फेर में ऊटपटाँग बक रहे थे। ये ज्योतिषी यों ही दून की हाँका करते हैं।"

मेना ने अपनी बात पर बल देते हुए कहा—"नहीं जी, मैं तो सब सुन रही थी। बूढ़ा बड़ा गुणी मालूम पड़ता था। सब बातें सच-सच बता दीं। देखो तुम चाहें ऐं करो चाहे चें! मैं अपनी लड़की का विवाह शिव के साथ न करूँगी।"

यह सुनकर झुँझलाहट के साथ हिमालय बोले--"मैनाक की महतारी! तुम तो तिल का पहाड़ बना देती हो, सुई का फारा कर देती हो! वह तो वैसे ही बक रहा था। शिवजी महान् देवता हैं, यह हमारा बड़ा सौभाग्य है, जो उन्होंने हमारी सुता को स्वीकार करने का वचन दिया है; नहीं तो उन आप्तकाम को विवाह आदि की क्या स्पृहा?"

मेना बोलीं--"देखो जी, सुन लो मेरी बात! शिवजी ब्रह्म-देव होंगे, तो अपने घर के होंगे। वे बड़े देवता बने रहें। उनका महादेवत्व हम छीन तो लेंगे नहीं। मैं अपनी बच्ची को अपने सामन कुएँ में न डालूँगी। मैं जान बूझकर उसे बन्दिनी न बना-ऊंगी। यदि उसके अनुरूप कोई वर न मिलेगा, तो मेरी बच्ची

जीवन भर क्वारी ही बनी रहेगी, ऐसे ही तपस्या करती रहेगी। तुम बहुत तीन पाँच करोगे, तो मैं अपनी बच्ची को लेकर कुएँ में कूद पड़ूँगी अथवा रस्सी गले में बाँधकर फाँसी पर लटक जाऊँगी, नहीं तो जहर पी लूँगी, या गले में दोनों माँ बेटी बड़ा सा पत्थर बाँधकर सबसे ऊँची इस सामने वाली चोटी से कूद पड़ूँगी। शिव चाहें सभी गुणों की खानि क्यों न हों, मुझे अपनी छोरी का उनसे विवाह करना किसी भी दशा में स्वीकार नहीं। मैं मर जाऊँगी, किन्तु शिव के साथ विवाह न होने दूँगी, न होने दूँगी, न होने दूँगी। तुम एक बार नहीं हजार लाख बार मुझसे कहला लो।"

सूतजी कहते हैं--"शौनकजी ! त्रियाहठ इसी का नाम है। स्त्री के मस्तिष्क में जो बात बैठ गयी, फिर उसे कोई चतुर स्त्री भले ही हटा सके, नहीं तो स्त्रियों से तो ब्रह्माजी भी हार मान गये हैं। हिमालय ने भी उसकी हाँ-में-हाँ मिला दी। अब वे लड़की के पीछे अपनी बनी बनाई गृहस्थी को कैसे बिगाड़ सकते थे ?"

पार्वतीजी मन-ही-मन मुस्करा रही थीं कि महादेव बड़े कौतुकी हैं, बैठे बिठाले हमारे घर में कलह का बीज बो गये। बिना बात यहाँ महाभारत छिड़ गया, किन्तु उन्हें तो शिव के बचनों पर विश्वास था। पिता के सम्मुख जिन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया है, वे अब छोड़ थोड़े ही सकते हैं।

इधर जब शिवजी को सब समाचार विदित हुआ, तो वे सोचने लगे--"अरे, यह तो हँसी में खसी हो गई। गुद-गुदाना उतना ही ठीक है, जितनी देर हँसता रहे। गुद-गुदाने से आँसू निकल पड़े, रोने से लग जाय, वह ठीक नहीं। किसी तरह बात बनानी चाहिये।"

सूतजी कहते हैं--"मुनियो ! शिवजी की लीला का कोई पार नहीं पा सकता। चोर से कहते हैं चोरी करो। शाह से

कहते हैं जागते रहना। स्वयं ही आग लगाते हैं, स्वयं ही फिर उसे पानी लेकर बुझाने दौड़ते हैं। उसी समय उन्होंने सप्तर्षियों का स्मरण किया। स्मरण करते ही भगवती अरुन्धती के सहित सप्तर्षि शिवजी के समीप आ उपस्थित हुए। तब शिवजी ने उनसे कहा--"ऋषियो! आप शीघ्र ही शैलराज हिमालय के समीप जावें। उसे आप समझा बुझाकर हमारी सगाई पक्की करावें। हिमालय तो आप के कहने से मान जायगा, किन्तु उसकी बहू-रानी आपके समझाने से नहीं मानने की। उसे ये पतिव्रताओं में श्रेष्ठ अरुन्धती देवी समझावेंगी। देखिये, मामले को गड़बड़ न करें, जैसे बने तैसे साम, दाम, दण्ड, भेद से ठीक रास्ते पर लाना। विवाह की मिठाई खाने के लिये तो सब की जीभों में पानी भर रहा था। अरुन्धती के सहित सप्तर्षि हिमालय के यहाँ गये। हिमालय तो सब समझे ही बैठे थे, उन्हें समझाने में तो सप्तर्षियों को श्रम नहीं हुआ, किन्तु मेना को रास्ते पर लाना टेढ़ी खीर थी। अस्तु, अरुन्धती देवी ने नाना इतिहास कथायें कहकर उसे भी समझा बुझाकर ठीक किया। विवाह की बात पक्की करके सप्तर्षि दौड़े-दौड़े शिवजी के समीप गये और हाँफते हुए बोले--"महाराज, अब देर करने से मामला गड़बड़ हो जायगा। जब तक भाँवर नहीं पड़ती, तब तक बेटी बाप की ही होती है, न जाने कब मत बदल जाय, इसलिये भगवन्! शुभस्य शीघ्रम्। अब चट-पट्ट चाईं-माईं हो जानी चाहिये। स्त्रियों की मति चञ्चल होती है, मेना को फिर किसी ने बहका दिया, तो फिर जीवन भर क्वारे ही रह जाओगे।" शिवजी ने भी सोचा--अब बहुत हो गया, पार्वतीजी अत्यधिक उत्कण्ठित हैं, इसलिये सप्तर्षियों से बोले--"अब महाराज, हमारा कोई निश्चय पुरोहित तो है नहीं। नया-ही-नया विवाह है। मैंने कभी ऐसा विवाह किया भी नहीं। क्या करना पड़ता है विवाह में?"

सप्तर्षियों ने कहा--"महाराज, अब के इस विवाह को तो आप खूब जोड़-तोड़ से धूम-धाम से करें। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, समस्त लोकपाल सब देव उपदेवों को बुलावें। हिमालय कुछ निर्धन तो है नहीं, कैलास पर खूब चहल-पहल हो।"

यह सुनकर हँसते हुए शिवजी बोले--"अच्छा, भैया! इस विवाह में अब तुम सब लोग अपने मन की कर लो।" यह सुनकर परम हर्षित होते हुए सप्तर्षि अपने-अपने लोकों को चले गये।

इधर हिमालय ने अपनी सभी जाति वाले सगे सम्बन्धियों को बुलाया। हिमालय का निमन्त्रण पाकर उदयाचल, अस्ताचल, मलय, मङ्गलप्रस्थ, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, विध्याचल, शक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील, कामद्गिरि आदि-आदि हजारों लाखों पर्वत बड़े ठाट-बाठ से आये। जितनी नदियाँ थीं, वे भी दिव्य-दिव्य रूप बनाकर पार्वती का विवाह देखने आईं। उनमें गङ्गा, यमुना, सरस्वती, चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भागीरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, ताप्ती, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिंधु, महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी विश्वा, आदि मुख्य थीं। वैसे तो लाखों करोड़ों नदियाँ आयीं। सभी वृक्ष आदि आये।

हिमालय ने सबसे सम्मति लेकर शिवजी के पास पोथी चिट्ठी पठाने का निश्चय किया। विवाह का शुभ मुहूर्त तो सप्तर्षि ही निश्चय कर गये थे, अब सात ही दिन तो विवाह के शेष हैं।

अतः पीरी चिट्ठी और लग्न-पत्रिका दोनों साथ-ही-साथ लिखाई गईं। वृद्ध गर्ग जो उनके पुरोहित थे बुलाये गये। चिट्ठी लिख-कर वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके पार्वती मण्डप में बुलाई गईं। विधिवत् पूजन करके कन्या के हाथ से लग्न पत्रिका छुआकर पढ़ी गई। सब स्त्रियाँ पूछने लगीं--"कै तैल निकले हैं ?" पुरो-हितजी ने बताया--"पाँच तैल हैं।" फिर मेना ने पूछा—"हल्दी किस दिन चढ़ेगी ? खीकरी किस दिन बँटेगी ? गीत किस दिन से आरम्भ होंगे ? कङ्कण कब बँधेगा ? मण्डप पूजन कब होगा ?" ये सब बातें पुरोहितजी ने बता दीं। तब पत्रिका पर कुंकुम छिड़क कर हल्दी से स्वस्तिक बनाकर अक्षत, दूर्वा, सुपारी रख-कर कलावे से बाँधकर श्रीफल दक्षिणा रखकर, गोद में पत्रिका को रखकर, उसका पूजन कराके ब्राह्मण के हाथ शिवजी के पास पत्रिका भेजी।

शिवजी के यहाँ तो पण्डित पुरोहित था नहीं। स्वयं ही उन्होंने पढ़ ली और हँस पड़े। इतने ही में वीणा बजाते, हरि गुन गाते नारदजी पहुँच गये। नारदजी को देखकर शिवजी खिल उठे और बड़े स्नेह से बोले—"वाह नारदजी ! आप अवसर को नहीं चूकते, कैसे ठीक समय पर आप आ पहुँचे ?"

नारदजी अनजान की भाँति पूछने लगे--"महाराज ! क्या पढ़ रहे हैं।"

शिवजी हँसे और बोले—"नारद ! सब तुम्हारे ही बोये बीज हैं, और तुम्हीं पूछ रहे हो ? तुमने अपनी जिस चेली को पञ्चाक्षर मन्त्र की दीक्षा देकर तप करने भेजा था, उसी का हमारे साथ विवाह है ?"

यह सुनकर नारदजी बोले—"महाराज, चलो अच्छी बात है, मिठाई खाने को मिलेगी और आज तक कभी बरात भी नहीं की है। यह भी मेरी इच्छा पूरी हो जायगी।"

यह सुनकर अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए शिवजी बोले—"अब भैया, कुछ काम करना चाहिये। विवाह का साज समान

जोड़ना चाहिये। राजा के यहाँ विवाह करने चलना है। धूम-धाम से बरात लेकर चलो।"

नारदजी ने चिट्ठी लाने वाले पुरोहित से पूछा—"कितने आदमियों की बरात लाने को कहा है?"

यह सुनकर पुरोहित कुछ कोप प्रदर्शित करते हुए बोले—"महाराज, ये बातें तो कङ्गाल लोगों के यहाँ पूछी जाती हैं। हमारे महाराज के यहाँ कुछ कमी तो है ही नहीं, चाहे जितनी बड़ी बरात लेकर आओ।"

यह सुनकर नारदजी हँस पड़े। शिवजी को तो ससुराल वालों की बात बड़ी करनी थी, इसलिये बोले—"पुरोहित महाराज! इन नारदजी का कभी विवाह तो हुआ नहीं। इन्होंने ऐसे ही बात कह दी। आप बुरा न मानें। हमारी सबसे राम-राम कह देना और गिरिराज से कह देना और सब देवता आवेंगे।" यह सुनकर पुरोहित महाराज, शिवजी तथा नारदजी को प्रणाम करके शैलराज के समीप चले गये और उनसे सब वृत्तान्त कह दिया। सब देवताओं का आगमन सुनकर गिरिराज और भी अधिक तैयारियाँ करने लगे। सब पर्वतों को बुलाकर उन्होंने कह दिया—"देखो, जितने अच्छे-अच्छे फल वाले वृक्ष हों सबको बुलाओ, कह दो जनवासे में सदा पके स्वादिष्ट फलों की वर्षा करते रहें। रसोइयों से कहा—जितने खट्टे, मीठे, चरपरे, नमकीन, सौंधे पदार्थ बना सकते हो सब बनाओ। लेह्य, चोस्य, पेय, खाद्य जितने तरह के बन सकें बनाओ। नदियों से कह दिया कोई दूध की बनकर बहने लगो, कोई घृत की, कोई मधु की, कोई दही की। और ऐसा करना किसी को हाथ लगाने की आवश्यकता ही न पड़े। सबके मुख में घुस जाया करना। बहुत-सी नदियाँ खीर बहावें। ऐसा करें ऊपर से जल रहे नीचे से खीर भरी रहे, ज्यों ही स्नान करने देवता बुड़की मारें कि शीघ्रता से उनके मुँह में खीर भर देना। बहुत से वृक्ष मालपुआ पकावें। जब वे सो रहें हों, तो इतने मालपुआ उन पर गिराओ कि सब ढक जायँ। बहुत-सी नदियाँ रायता बहावें बहुत-सी चटनियाँ। इस प्रकार परसने की आवश्यकता ही न हो। जो

चाहे जितना खाये पीये। कुछ आक, धतूरे, भाँग के पेड़ भी लगे रहें, कुछ पर्वत अपनी शिलाओं पर पीसकर नदियों में मिला दे। जिसे आवश्यकता हो घुटी-घुटाई कीच की तरह गाढ़ी-गाढ़ी दूध चीनी से मिली चकाचक भाँग पीवें। भँगेड़ी लोग कहा करते हैं--

विजया ऐसी छानिये, जैसे गाढ़ी कीच।
घर के जाने मर गये, आप नसे के बीच॥
सबेरे फेरि छनेगी जी!

सो, शिवजी के भूत, प्रेत जितनी चाहें भाँग पीवें।" इस प्रकार ज्योनार का प्रबन्ध करके गिरिराज ने विश्वकर्मा को बुलवाकर दिव्य-से-दिव्य मण्डप और जनवासा बनवाया। बड़े-बड़े दुखने, तिखने, पँचखने, सतखने महल बनवाये; सबमें अलग अलग बिस्तरे। एक-एक देवता की सेवा के लिये सौ-सौ स्वर्ग की अप्सरायें, नाना प्रकार के पहिनने, ओढ़ने, खाने, पीने के सामान भर दिये। इस प्रकार विविध प्रकार की तैयारियाँ करके सभी पर्वतों को सब काम सौंप दिये। तुम इस काम को देखना, तुम इसका प्रबन्ध करना।

इधर शिवजी ने नारदजी से कहा--"नारद! भैया अब तुम कुछ तैयारियाँ करो।"

नारदजी बोले—"महाराज, मुझे आप जो आज्ञा दें।"

शिवजी ने कहा—"भाई! आज्ञा कौन दे। तुम्हारा ही काम है, वैकुण्ठ से विष्णु भगवान् को, ब्रह्मलोक से ब्रह्माजी को, स्वर्ग से इन्द्र को, आठों दिशाओं से लोकपालों को, यक्ष गन्धर्व आदि सभी को बुलाओ। कहना—सब अपने स्त्री बच्चों के सहित आवें। जो नहीं आवेगा, आज से उसे हम अपनी पंक्ति से पृथक कर देंगे।"

नारदजी तो ऐसे कामों को उधार खाये बैठे ही रहते हैं।

उनके पैर में तो चक्कर ही है। बात-की-बात में सभी लोकों में हल्ला कर आये, सबको निमन्त्रण दे आये—"शिवजी की बरात के लिये झरां न्योता है।" बैकुण्ठ, ब्रह्मलोक, स्वर्गलोक, महर्लोक आदि सभी में कहकर झटपट शिवजी के यहाँ आ गये। अब बरातियों का आना आरम्भ हुआ। सभी अपने बाल-बच्चे, स्त्री, सेवक सेना के सहित कैलास पर आ गये। लक्ष्मीजी ने आकर शिवजी पर तेल चढ़ाया, हल्दी चढ़ाई। सब देवताओं की स्त्रियों ने विवाह के नेग-जोग कराये। पितर देवताओं का पूजन कराया, चामुण्डा देवी की मनौती मानी। विष्णु भगवान् ने हँसकर कहा—"महाराज, अब आप महादेवपने को विवाह तक भूल जाइये। सोलहो आने दूल्हा बन जाइये, क्योंकि आप जैसा आचरण करेंगे, वही संसार में प्रमाण हो जायगा। लोग उसी का अनुसरण किया करेंगे।"

यह सुनकर शिवजी हँसते हुए बोले—"अब महाराज, आप जैसे कहेंगे वैसे ही करूँगा। समधी का नेग-जोग तो आपको ही करना है।"

शिवजी की स्वीकृति पाकर भगवान् ने अत्रि, वसिष्ठ, वामदेव, पुलह, क्रतु, भृगु, अंगिरा, जाबालि, आदि सभी बड़े-बड़े वेदज्ञ, ऋषि महर्षियों को बुलाया। सभी ने स्वस्त्ययन आदि वैदिक कर्म किये। शिवजी ने सभी के चरणों में प्रणाम किया। सभी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया—"आपको अत्यन्त ही मलूक-सी बहू मिले, जो रुनझुन-रुनझुन करती घर में इधर-से-उधर फुदकती रहे।" इस प्रकार सब लौकिक वैदिक कृत्य हो जाने पर अब शिवजी की बरात चली।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आप लोग तो किसी बरात में काहे को गये होंगे। आप तो बालकपन से ही बाबाजी बन गये हैं। बरात में जाने के लिये बच्चों को, बूढ़ों को, सभी को बड़ा

उत्साह होता है। भाँति-भाँति की तैयारियाँ करते हैं। कैसा भी गम्भीर पुरुष क्यों न हो, जहाँ उसने सकोरे का बरात में पानी पिया नहीं कि उसे मस्ती चढ़ी। विवाह में चारों ओर चहल-पहल होती है। सरसता सजीव होकर विचरण करने लगती है।"

सब बड़ी धूम-धाम से चले, विष्णु भगवान् तो खिलवाड़ प्रिय ही ठहरे। बोले—"महाराज! आपकी सेना सबसे आगे चले और आपके गण ही आपका शृङ्गार करें।" शिवजी तो अब दूल्हा ही ठहरे। दूल्हा से जो भी कोई करवाना चाहे करा सकता है। चाहे लोढ़ा पुजवा लो, सूप पुजवा लो, आरा पुजवा लो, बहू के पैर छुआ लो। शिवजी ने कहा—'जैसी आज्ञा' अब शिव गणों ने शिवजी का शृंगार किया। जटाओं को फटकारकर सर्पों का मुकुट बनाकर, मुण्डों की माला पहिनाकर, आभूषणों के स्थान पर व्यालों को लपेटकर, बैल पर चढ़ाकर उनको आगे किया। उनके पीछे काली कराली खप्पर वाली, डाकिनी-शाकिनी, भूतनी-पिशाचनी, चामुण्डा, रेवती, पूतना आदि नाचतीं, गातीं हा-हा हू-हू करती चलीं। भूत, प्रेत, पिशाच, काने, बूचे, लँगड़े, लूले, एक पैर वाले, बहु पैर वाले, बहु सिर वाले, बिना सिर वाले, काले, गोरे, लाल, भयंकर मूर्तियों वाले, पेट फुलाये, जीभ लपलपाते, विविध प्रकार के वाहनों पर चढ़े चल रहे थे। पीछे-पीछे सब देवता अपने वाहनों और विमानों पर चढ़कर बराती बने चल रहे थे।

गिरिराज हिमालय ने बड़ी धूम-धाम से अगवानी करके जनवासा दिया। शिवजी के ऐसे रूप को देखकर गाँव-नगर के बालक अत्यन्त ही भयभीत हुए, भूतों को देखकर सब डर गये। शिवजी के ऐसे विकराल रूप को देखकर सभी के छक्के छूट गये। इस समय शिवजी ने पाँच मुख, दस हाथ बना लिये थे।

गजचर्म पहिने थे, मुण्डों की माला और सम्पूर्ण शरीर में चिता

की भस्म लगाये हुए थे। बरात जब जनमासे की ओर जा रही

थी तब मेना ने उत्सुकता पूर्वक नारदजी से पूछा--"मैं दूल्हा को देखना चाहती हूँ, नारद ! इनमें दूल्हा कौन-सा है ?"

नारदजी ने कहा—"महारानीजी ! जो बैल पर पाँच मुँह वाले चढ़े हैं, वे ही तुम्हारी दुहिता के दूल्हा हैं।" यह सुनकर तो मेना मारे दुःख के मूर्छित हो गईं। क्रोध के कारण उनके ओठ फरकने लगे। कहने लगीं—"इन सप्तर्षियों ने मुझे ठग लिया। यदि कहीं अब वे दीख जायँ, तो मैं इन सबकी दाढ़ी ही उखाड़ लूँ। भला ऐसे भयंकर भूतनाथ के साथ मेरी सुकुमारी की हठ-पूर्वक सगाई करा दी।"

नारदजी और भी ऋषि, महर्षियों को बुला लाये। सप्तर्षि भी आ गये। सबने मेना को समझाया, यह शिवजी अपना माया से ऐसा रूप बना लिया है, तुम भाँवरी के समय देखना कैसा सुन्दर स्वरूप है ?"

जैसे तैसे सभी ने मेना को समझाया बुझाया। फिर द्वार-पूजा हुई। मेना ने रत्न के थाल में आरती की। देवताओं के साथ शिवजी ने मण्डप में प्रवेश किया। नियत लग्न में वेदज्ञ ब्राह्मणों ने शिवजी के साथ पार्वती का शास्त्रोक्त विधि से विवाह संस्कार कराया। फिर सब ग्रह, देवताओं आदि के पूजन के अनन्तर भाँवरी फिरी। शिव और शिवा दोनों की गाँठ जोड़कर स्त्रियाँ भीतर ले गईं।

सभी स्त्रियाँ जुट आईं। सरस्वतीजी, लक्ष्मीजी, शचीजी और भी मेना की सगी सम्बन्धिनी स्त्रियों ने आकर हास विनोद-करके शिवजी को खूब खिजाया, किन्तु शिवजी भी किसी से कम थोड़े ही थे। उसी समय रति ने आकर अपने पति काम को जीवित करने के लिये प्रार्थना की। विवाह के अवसर पर शिवजी ने काम को एक प्रकार से संजीवन दान दिया। फिर नाना भोज्य पदार्थों से ज्योनार हुई। दो-तीन दिन बड़ी धूम-धाम से बारात

रही। यथेष्ट हास्य, विनोद आदि होते रहे। हिमालय ने सभी प्रकार से आये हुए बरातियों का स्वागत-सत्कार किया। सभी लोग गिरिराज के सत्कार से अत्यधिक सन्तुष्ट हुए। अन्त में विदाई का समय आया। मेना ने अपनी पुत्री को पतिव्रत धर्म की विविध प्रकार से शिक्षा दी। पार्वतीजी ने जाते समय आँसू बहाते हुए सभी का आलिंगन किया। माता पिता ने रोते-रोते अपनी प्यारी पुत्री को हृदय से लगाकर विदा किया। शिवजी अपनी प्रिया को संग लेकर कैलास पर आ गये।

"दूल्हा दुलहिन मिल गये, फीकी पड़ी बरात।"

बराती लोग अपना-सा मुँह लिये अपने-अपने स्थानों को चले गये। शिवजी, पार्वतीजी के संग कैलास पर रहकर विविध प्रकार की क्रीड़ा करने लगे, अनेक प्रकार के हास्य विनोद करते हुए वे अपनी प्राणप्रिया पार्वती को प्रसन्न करते रहते थे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह मैंने आपसे अत्यन्त ही संक्षेप में शिवजी के विवाह का प्रसंग वर्णन किया। शिव चरित्र अनन्त है। उसका विस्तार के साथ पूरा वर्णन तो चतुर्मुख ब्रह्मा, सहस मुख शेष भी नहीं कर सकते। जो इस प्रसंग को श्रद्धा सहित सुनेंगे, उन पर शिवजी की कृपा होगी और अन्त में परम पद के अधिकारी होंगे।"

छप्पय

विविध भाँति तें करी परीक्षा शिव गिरिजा की।
दृढ़ निष्ठा लखि बरीं कामना पुरी प्रजा की॥
विधि हरि सुर गन्धर्व सबनि मिलि धूम मचाई।
शिव की निरखि बरात स्वयं शोभा सकुचाई॥
नित्य शक्ति शिव की प्रिया, अपनाई फिरतें बरी।
शिव दुलहा दुलहिनि शिवा, रति लखि पति हित पग परी॥

परम पवित्र शिव-चरित्र का उपसंहार

(२१६)

इदं पवित्रं परमीशचेष्टितम्
यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम्
यो नित्यदाऽकर्ण्य नरोऽनुकीर्तयेद्
धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः ॥*

(श्री० भा० ४ स्क०, ७ अ० ६१, श्लोक)

छप्पय

काली गौरी भई हँसी मे कोप जतायो।
देवी दया दिखाइ मगर तें बाल छुड़ायो॥
गनपति और कुमार पुत्र द्वै अति ही प्यारे।
वाहन चूहो मोर भक्त भय हरिबेवारे॥
शक्ति युक्त शिव विविधि विधि, लीला प्राकृतवत् करहिँ।
जाहि सुनहिँ जे भक्तगन, तिनिके अघ छिनमहँ कटहिँ॥

शक्ति के सहित शिव संसार में सर्वत्र सरस क्रीड़ा कर रहे हैं। सर्वत्र शिव शक्ति व्याप्त है। स्त्री संज्ञक जो भी हैं, सब शिवा

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"हे कुरुकुल में उत्पन्न होने वाले विदुरजी! यह शिवजी का चरित्र परम पवित्र है। यश और आयु को बढ़ाने वाला है तथा पापों के पुञ्ज को नष्ट करने वाला है, जो पुरुष इस पवित्र आख्यान को भक्ति-भाव से नित्य सुनेंगे, या सुनकर कथन करेंगे, कीर्तन करेंगे तो उनके सब पाप नष्ट हो जायेंगे।"

हैं। पुरुष संज्ञक जो भी हैं सब शिव हैं। इस प्रकार शिव के अनन्त रूप हैं। अनन्त रूपों में वे असंख्यों अगणित लीलायें अनादि काल तक करते रहते हैं। उनका आदि नहीं, अन्त नहीं, वार नहीं, पार नहीं, ओर नहीं, छोर नहीं। वे जो भी करें सब संभव है। उनकी लीला में असंभव कुछ वस्तु ही नहीं। शिव किसी कर्म के अधीन होकर—प्रारब्ध वश होकर—कार्य नहीं करते, वे तो कर्म नियामक प्रारब्ध के भी विधाता और जीवों के भी ईश हैं, स्वेच्छा से विनोद के लिये कालिका शिवा को लेकर क्रीड़ा करते हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवती कालिका देवी का शिवजी के साथ जिस प्रकार फिर से गिरिजा पार्वती रूप में विवाह हुआ, उसका वर्णन मैंने अति संक्षेप में आपके सम्मुख किया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! आप भगवती पार्वती को बार-बार काली-काली कहकर सम्बोधित कर रहे हैं, पीछे आपने उनके श्रीअङ्ग का वर्णन भी नील कमल के समान काले रङ्ग का बताया है, किन्तु हम तो सदा पार्वती को गौर वर्ण की सुनते आये हैं, उनका नाम ही गौरी है। इसीलिये शिवजी को गौरी-शङ्कर कहते हैं, इन दोनों बातों में तो बड़ा विरोध-सा प्रतीत होता है। हमारी इस शङ्का का समाधान कीजिये।"

इतना सुनते ही सूतजी बड़े जोरों से हँसने लगे। हँसते-हँसते वे लोट-पोट हो गये। उन्हें हँसते हुए देखकर शौनकजी ने पूछा—"महाराज! आपको ऐसी कौन-सी कथा याद आ गई, जिसके कारण आप इतने हँस रहे हैं?"

अपनी हँसी को रोककर, आचमन करके सूतजी कहने लगे—"मुनियो! अब आपको क्या बताऊँ? आप तो सबके सब ठहरे बाबाजी। आपने न कभी विवाह किया न बरात गये। आप

गृहस्थियों की हँसी दिल्लगी की बातें क्या जानें ? बात यह है कि जब नई बहू आती है, तब उससे हँसी विनोद करने को चित्त बहुत चाहता रहता है। हँसी में दोनों ओर से ऐसी-ऐसी बातें हो जाती हैं कि बोलना ही बन्द नहीं हो जाता है, कभी-कभी गुत्थम-गुत्थी तक की भी नौबत आ जाती है और कभी-कभी तो ऐसा प्रसंग आ जाता है कि जीवन भर के लिये कोई बखेड़ा खड़ा हो जाता है। यह भी कहा नहीं जा सकता कि हँसी विनोद सम्हालकर करना चाहिये, क्योंकि जब विनोद में चित्त तल्लीन हो जाता है, तो फिर कौन-सी बात कहनी चाहिये, कौन-सी नहीं—यह विवेक भी नहीं रहता। फिर भी नवविवाहित वर को चाहिये कि अपनी धर्मपत्नी के रूप की और चरित्र की हँसी में भी आलोचना न करे। ये दो बातें ऐसी हैं कि स्त्रियों के हृदयों में बाण की भाँति चुभ जाती हैं। इसलिये हँसी में भी उसके रूप की प्रशंसा ही करता रहे। शिवजी से यही एक भूल हो गई।"

शौनकजी बोले—"सूतजी ! प्राकृत लोगों की हँसी विनोद बातें हमें अच्छी लगती नहीं, किन्तु शिवा-शिव का विनोद भी पापों का नाश करने वाला है, अतः हमें आप इस प्रसंग को अवश्य सुनाइये।"

यह सुनकर सूतजी कहने लगे—"महाराज ! ब्याह करके शिवजी घर आ गये। घर में कोई माता-पिता बड़े बूढ़े होते हैं, तो उनकी कान भी की जाती है। हँसी विनोद एक मर्यादा में निश्चित काल में होता है। शिवजी तो स्वयं ही सबके माता-पिता, बड़े बूढ़े ठहरे। नई बहू घर में आई। हर समय छेड़-छाड़ हँसी विनोद के फव्वारे छूटने लगे। एक दिन की बात है—शिवजी भगवती के गले में अपना श्रीहस्त डाले हुए प्रेम पाश में उन्हें आबद्ध किये हुए बोले—"गिरिजे ! तुम मेरी पाश में आबद्ध कैसी लगती हो, बताऊँ ?"

पार्वतीजी ने उल्लास के सहित कहा—"हाँ, अच्छा बताओ कैसी लगती हूँ ?"

शिवजी ने परिणाम का विचार तो किया नहीं। वे तो विनोद में तल्लीन थे, बोले—"तुम ऐसी लगती हो, मानों सुन्दर स्वच्छ वर्ण के चन्दन के वृक्ष से काली नागिनी लिपटी हो और सब तो ठीक ही है, किन्तु तुम्हारा यह काला कलूटा रूप इस लाल चुँदरी में से ऐसा लगता है, मानों लाल बादलों ने चन्द्रमा को ढक लिया हो, तुम्हारा काला शरीर कृष्ण पक्ष की काली रात्रि के समान दिखाई देता है।"

बस, अब क्या था ? पार्वतीजी के क्रोध के कारण ओठ फड़कने लगे। एक झटका मारा, शिवजी के हाथ को छुड़ाकर अलग खड़ी हो गईं और लाल-लाल आँखें करके कहने लगीं—"मनुष्य सबको अपनी ही आँखों से देखता है। दूसरों के तिल भर दोष भी कुटिल पुरुषों को पहाड़ के समान दिखाई देते हैं। अपने पहाड़ से दोष भी दिखाई नहीं देते। मुझे काली नागिनि बता रहे हैं, अपनी ओर नहीं देखते ! सम्पूर्ण हलाहल विष को गट्-गट् पी गये। तुम्हारे तो कण्ठ में अब तक विष भरा है। तुम्हारा नाम नीलकण्ठ है। इसीलिये तुम्हारे कण्ठ से बचन क्या निकलते हैं, मानो विष बुझे बाण ही निकल रहे हों। तुमने मेरे पिता की हत्या करा दी, विचारे भृगु की दाढ़ी नुचवा ली, भग के नेत्र ही फुड़वा दिये, पूषा के सब दाँत झड़वा दिये। इन कामों के कराने में तुम्हें लज्जा नहीं आई। मुझे काली कहते हो, तुम्हारा नाम महाकाल नहीं है क्या ? मुझे कुरूपा बताते हैं, अपनी ओर नहीं देखते। कपालों की माला, स्मशान में निवास, चिता भस्म का अंगराग, भूतिनी, प्रेतिनी, डाकिनी, साकिनी के सम्मुख नंगे नाचने में तुम्हें शील संकोच नहीं !"

शिवजी का तो मुख फक्क पड़ गया। उन्हें क्या पता था, कि इस बात का ऐसा दुष्परिणाम होगा। हँसी में खसी हो गई, रङ्ग में भङ्ग पड़ गई। अब क्या हो ? वे बड़े ही मधुर बचनों में कहने लगे—"अरे गिरिजे ! तुम बुरा मान गई क्या ? सच कहता हूँ—मैंने तो हँसी में यह बात कही थी।"

तुनककर गिरिजा बोलीं—"चलो, हटो, मुझे ऐसी हँसी अच्छी नहीं लगती। तुम मेरे रूप का तिरस्कार करते हो। इसलिये न कि मैंने अपने आप तुमसे विवाह करने की इच्छा की थी, तुम्हारी प्राप्ति के लिये तप किया था। अर्थी का इसी प्रकार तिरस्कार होता है ?"

शिवजी ने नम्रता से कहा—"देवि, मैंने तुम्हारा तिरस्कार नहीं किया। तुम तो मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी हो। देखो, गृहस्थ आश्रम नाना चिन्ताओं का घर है। रात्रि दिन एक-न-एक चिन्ता लगी ही रहती है। इसमें यही एक बड़ा सुख है कि बैठकर पति-पत्नी हँसी विनोद करके मन को बहला लेते हैं। नीरस जीवन में सरसता का स्रोत उत्पन्न कर लेते हैं। अब मैं कान पकड़ता हूँ, अब भूलकर भी ऐसी बात कभी न कहूँगा।"

पार्वतीजी बोलीं—"अब मैं तुम्हारी इन चाटुकारिता की बातों में आने वाली ही नहीं। तुम मेरा काले रंग के कारण अपमान करते हो, अब मैं जब तक तपस्या करके गोरी न हो जाऊँगी, तब तक तुम्हारे घर पैर भी न रखूँगी।"

शिवजी तो घबरा गये। उन्होंने हर प्रकार से देवी को मनाया, हाथ जोड़े, पैरों पड़े, ठोढ़ी में हाथ दिया, किन्तु देवी ने तो चण्डी रूप धारण कर लिया था। एक भी शिवजी की बात न सुनी और रोती हुई हिमालय की ओर चल दीं।

भगवती पार्वतीजी समझती थीं, शिवजी मुझसे कितना स्नेह करते हैं, इसलिये इन्हें पीछे मेरा रूप रखकर कोई ठग न लें, इसलिये बीरक को द्वारपाल बना गईं कि भीतर किसी स्त्री को न जाने दो। पार्वतीजी को जो शङ्का थी, वही हुई। आडि दैत्य सर्प का वेश बनाकर वीरक को वंचित करके घुस गया और भीतर उसने पार्वतीजी का वेष बना लिया। शिवजी उसे पहिचान गये और मार डाला।

इधर पार्वतीजी एक पर्वत शिखर पर जाकर घोर तपस्या करने लगीं। वायु ने जाकर पार्वतीजी से यह बात कह दी कि कोई दैत्य आपका रूप बनाकर शिवजी से बात कर रहा था। इस पर माताजी को बड़ा क्रोध आया। उनके क्रोध से एक सिंह की उत्पत्ति हुई। पार्वतीजी ज्यों ही उसके मुख में प्रवेश करना चाहती थीं कि सहसा भगवान् ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने पार्वती को रोका कि—"देवि! तुम यह क्या करती हो? तुम मुझसे जो चाहो वरदान माँग लो।"

पार्वतीजी ने कहा—"लोकपितामह! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो यही वर दें कि मेरा कालापन दूर हो जाय, मैं गोरी हो जाऊँ।"

ब्रह्माजी ने कहा—"एवमस्तु! ऐसा ही होगा।" उसी क्षण देवी के शरीर से कालेपन को लेकर एक भीम आकार वाली त्रिनेत्रा घण्टा हाथ में लिये हुए काली देवी उत्पन्न हुईं। ब्रह्माजी ने उन देवी से कहा—"देवि! तुम विन्ध्याचल पर जाकर निवास करो। यह सिंह तुम्हारा वाहन होगा। वहाँ तुम सबके द्वारा पूजी

जाओगी।" ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर वे विन्ध्याचल पर जाकर रहने लगीं।

इधर शरीर से कालापन निकल जाने से पार्वती देवी दिव्य रूप धारिणी सुवर्ण के समान दमकती हुई गौरी हो गईं। ऐसे शिव योग्य, सुन्दर स्वरूप को पाकर शिवा अपने प्राणपति शिव

के समीप गईं। उनके रूप को बदला हुआ देखकर द्वारपालों ने उन्हें रोक दिया। फिर जैसे तैसे अपना परिचय देकर देवी भी भीतर गईं। शिवजी इनके अद्भुत रूप को देखकर अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। उसी दिन से शिवा-शिव गौरीशंकर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! आपने यह बड़ी सुन्दर कथा सुनाई। अब हमें एक शंका और है, कोई तो कहते हैं-पार्वतीजी के षड़ानन और गजानन दो पुत्र थे, कोई कहते हैं—पार्वतीजी के कोई पुत्र ही नहीं हुआ, यह क्या बात है?"

सूतजी बोले—"महाराज! इन देवताओं के चरित्रों को आप कुछ पूछें नहीं। आपने जो बातें सुनी हैं, दोनों ही सत्य हैं। षड़ानन-कार्तिकेय-शिवजी के वीर्य से ही उत्पन्न हुए हैं, वह वीर्य कुछ अग्नि के मुख में पड़ा, कुछ पार्वतीजी ने धारण किया। जल में वह इकट्ठा हुआ। गंगाजी ने धारण किया, वे भी समर्थ न हुईं तो एकान्त में सरकण्डे के वन में रख दिया। कृतिकाओं ने अपना पुत्र मानकर इन्हें दूध पिलाया। ये छः मुख बनाकर दूध पीने लगे। इस प्रकार ये पार्वती के, अग्नि के, गंगा के और छः कृतिकाओं के सभी पुत्र कहलाते हैं। ये देवताओं के सेनापति हुए। इन्होंने ही प्रबल पराक्रमी तारक दैत्य को मारा। उसकी कथा बड़ी है, उसे मैं यहाँ विस्तार से कहने में असमर्थ हूँ।"

गणेशजी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी ऐसी ही कथा आती है कि पार्वतीजी ने अपने शरीर के मल को छुड़ाकर उससे एक पुरुषाकार मूर्ति बनाई। उसका मुख गज के समान था। उसे पुत्र कहकर गंगाजी में डाल दिया। तब गंगाजी ने पार्वती की सहेली के नाते उसे प्यार किया। इस प्रकार गणेशजी की उत्पत्ति हुई।

एक कथा पुराणों में भी आती है कि जब पार्वतीजी के यहाँ

गणेशजी का जन्म हुआ, तो बच्चे को देखने और बधाई देने को सभी देवता आने लगे। सभी बच्चे को देखते और उसे आशीर्वाद देते, पार्वतीजी की बड़ाई करते, उन्हें भाँति-भाँति से बधाई देते। शनैश्चर देव भी सुनकर पार्वती के पुत्र को देखने आये, किन्तु आकर वे नीची दृष्टि किये हुए बैठे रहे, न उन्होंने पार्वती जी को देखा न गणेशजी को। अपनी पत्नी के शाप के भय से उन्होंने बच्चे की ओर आँख भी न उठाई।

इस पर शौनकजी बोले—"सूतजी! शनैश्चर देवता को उनकी पत्नी ने क्यों शाप दिया?"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाराज, अब क्या बताऊँ? मैं तो कहता हूँ, सर्पों को वश में करना सरल है, किन्तु घरवाली को सदा प्रसन्न बनाये रखना बहुत ही कठिन है। बात यह थी कि शनैश्चर का विवाह चित्ररथ गन्धर्व की कन्या के साथ हुआ, वह बड़े उग्र स्वभाव की थी।

एक दिन शनीचर देवता नीचे सिर किये हुए भगवान् के ध्यान में तल्लीन बैठे थे। इतने में ही इनकी पत्नी बन-ठनकर, सोलहो शृंगार करके, उछलती, कूदती, मद में मदमाती बनी इनके समीप आई। इन्होंने तो उसे देखा नहीं, ये तो भगवद् ध्यान में मग्न थे। उसने आते ही आव गिना न ताव शनैश्चर देवता को शाप दे दिया—"देखो, मैं कितनी अभिलाषा से कैसे-कैसे मनोरथ करती हुई, तुम्हारे समीप आई। तुमने मेरा मान-सम्मान करना तो पृथक् रहा, दृष्टि से भी सत्कार नहीं किया। आँख उठाकर मेरी ओर देखा भी नहीं। इसलिये मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि तुम्हारी दृष्टि जिस पर पड़ जायगी, जिसे तुम आँख उठाकर देख लोगे, वही वस्तु नष्ट हो जायगी। तभी से शनीचर की दृष्टि मारक समझी जाने लगी, इसलिये सब देवताओं के

सम्मुख सूर्य पुत्र शनैश्चर देवता शिवा और गणेश को नहीं देखते थे।"

पार्वतीजी ने पूछा—"क्योंजी, लल्लू, शनैश्चर देवता! तुम मेरी ओर तथा मेरे बच्चे की ओर देखते क्यों नहीं। नीचा सिर करके क्यों बैठे हो?"

यह सुनकर नीचा सिर किये हुए दुःख के साथ शनीचर देवता बोले—"क्या बताऊँ? माताजी, मेरी उग्र स्वभाव वाली घरवाली ने ऐसा-ऐसा शाप दिया है। इसीलिये आपको और आपके बच्चे को नहीं देखता कि कहीं इस बच्चे का कुछ अनिष्ट न हो जाय।"

पार्वतीजी ने हँसते हुए कहा—"अरे, पति पत्नी में तो ऐसी शापा-शापी होती ही रहती है, तुम निर्भय होकर मेरे बच्चे को देखो।"

अब शनैश्चर क्या करते? ज्यों ही उन्होंने दाहिने नेत्र की कोर से बच्चे के सिर को देखा, त्यों ही शिशु का सिर धड़ से पृथक् होकर दूसरी ओर गिर पड़ा। उसमें से ज्योति निकली, वह अपने अंशी भगवान् कृष्ण में जाकर मिल गई। अब तो पार्वतीजी के शोक का वारापार नहीं रहा, रोते-रोते उन्होंने घर भर दिया, भगवान् विष्णु को दया आई। वे गरुड़ पर चढ़कर पुष्पभद्रा नदी के तट पर गये। वहाँ हाथी हथिनीको सोते देखा। उनका तत्काल उत्पन्न बच्चा दूर पड़ा था। भगवान् ने अपने चक्र से उस-गज-शिशु का-सिर काटकर शीघ्रता से आकर गणेशजी के धड़ पर लगा दिया। गणेशजी उठकर खड़े हो गये। तभी से गजानन-गजवदन कहलाये।"

इस पर शौनकजी ने पूछा--सूतजी! ये गणेशजी फिर सब देवताओं में अग्र पूज्य क्यों बन गये। पिता से भी पूर्व इनकी पूजा क्यों होती है?"

इस पर सूतजी बोले—"महाराज, इस सम्बन्ध में भी एक पौराणिक कथा है। जब स्कन्ध और गणेश पार्वती के पुत्र हुए, तब देवताओं ने अमृत से तैयार करके एक लड्डू पार्वतीजी को दिया। यदि दो लड्डू देवता देते तब तो माँ एक-एक बाँट देती। लड्डू एक, बच्चे दो। अमृत का लड्डू तोड़कर भी नहीं बाँटा जा सकता था। दोनों बच्चे माँ से लड्डू माँगने लगे। माता ने कहा—"जो धर्माचरण से अपने को श्रेष्ठ सिद्ध कर देगा, वही इस मोदक का अधिकारी होगा।"

स्कन्दजी ने सोचा—"सबसे श्रेष्ठ कार्य, पुण्य तीर्थों का स्नान, प्रसिद्ध धामों के दर्शन और पृथ्वी की प्रदक्षिणा है, इसलिये वे अपने मयूर पर चढ़कर शीघ्र-से-शीघ्र सभी तीर्थों में स्नान कर आये, सब धामों के दर्शन कर आये। गणेशजी का एक तो पेट भी लम्बा था, बड़े तोंद के कारण उन्हें चलने में कष्ट होता था, उनका वाहन चूहा भी चलने में कुछ कच्चा ही है, अतः उन्होंने अपनी श्रद्धा से अपने मन से ही कहा—"माता-पिता करोड़ों तीर्थों से करोड़ों गुणा श्रेष्ठ हैं। अतः मैं तो इनकी ही परिक्रमा किये लेता हूँ।" यह सोचकर उन्होंने अत्यन्त ही श्रद्धा भक्ति सहित माता-पिता की प्रदक्षिणा की और हाथ जोड़कर शिवजी के सम्मुख खड़े हो गये।

इतने में ही स्कन्दजी भी आ गये, आकर लड्डू माँगने लगे। तब हँसकर माताजी बोलीं—"बेटा! इस लड्डू को खाने वाला बड़ा भारी लेखक, चित्रकार, विद्वान्, शास्त्र तथा ज्ञान-विज्ञान में पारङ्गत होगा। इसका अधिकारी तो गणेश ही है, क्योंकि जो घर में उपस्थित माता-पिताओं को छोड़कर तीर्थों में भटकता है, उसकी तीर्थ-यात्रा निष्फल है। माता-पिता करोड़ों तीर्थों से भी श्रेष्ठ हैं। इसलिये इस लड्डू को तो गणेश ने ही अपनी बुद्धि से जीता।"

पार्वतीजी की बात सुनकर शिवजी भी कहने लगे—"हाँ ठीक है। गणेश लड्डू का तो अधिकारी है ही, मैं यह भी आशीर्वाद देता हूँ कि आज से इन्हीं की अग्र पूजा हो। इनकी पूजा से सभी देवता सन्तुष्ट हों।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! तभी से विघ्नविनाशक की सब कार्यों में प्रथम पूजा होती है।"

यह सुनकर शौनकजी बोले—"सूतजी! माताजी ने यह तो पक्षपात-सा किया। माता का हृदय तो दयामय होना चाहिये। उसे वस्तु के बाँटने में गुणी निर्गुणी पुत्र का ध्यान न करना चाहिये। उसे सब पुत्रों पर दया प्रदर्शित करनी चाहिये।"

सूतजी बोले—"महाभाग! न्याय और बात है, दया और बात है। जब हम न्याय के सिंहासन पर बैठेंगे, तो हमें धर्मपूर्वक जो सत्य हो, वही न्याय करना चाहिये। यों दया के अवसर पर दया करना हो, तो अपने प्राणों को अर्पण करके भी दूसरों के दुःखों को दूर करना चाहिये। न्याय शास्त्र की दृष्टि से लड्डू पर गणेशजी का ही अधिकार था; इसीलिये माताजी ने उन्हें दे दिया। यों माताजी की दया तो अगाध है। अपने बच्चों की तो बात पृथक् रही। वे सभी पर समान रूप से दया करती हैं, क्योंकि सभी लोग उसके सगे पुत्र ही हैं। जगन्माता जो ठहरीं, अपनी सम्पूर्ण तपस्या अर्पण करके भी उन्होंने ग्राह के मुख से अनाथ बच्चे को बचाया था।"

यह सुनकर शौनकजी बोले—"माता पार्वतीजी ने ग्राह के मुख से बच्चे को कैसे बचाया? इस आख्यान को सूतजी! हमें अवश्य सुनावें।"

शौनकजी की उत्सुकता देखकर सूतजी कहने लगे—"महाभाग! जब शिव पार्वतीजी का विवाह हो गया, तब एक बार वैसे ही कुतूहल वश पार्वतीजी समीप के ही सरोवर के किनारे

विराजमान थीं। उस दिन न जाने क्यों शिवजी किसी कार्य से कहीं चले गये थे। भगवती जगदम्बिका वहाँ सरोवर के स्वच्छ सुललित सलिल की बीचियों को निहारते-निहारते तन्मय हो गई थीं कि सहसा उन्हें एक अत्यन्त ही करुण पूर्ण आर्त स्वर सुनाई पड़ा। जगदम्बिका सम्भ्रम के सहित इधर-उधर अपने कमल सदृश नेत्रों को विस्फारित करती हुईं निहारने लगीं। अकस्मात् उन्हें सामने जल में ही एक ग्राह दिखाई दिया। वह किसी बच्चे को पकड़े हुए था, जो चार-पाँच वर्ष का बड़ा ही सुन्दर, सुघड़, तेजस्वी और प्यारा था। उसकी भीगी हुई अलकावली मुख पर बिथुरी हुई बड़ी ही भली मालूम पड़ती थीं। भय के कारण वह थर-थर काँप रहा था और पूरी शक्ति लगाकर चिल्ला रहा था--"अरे, मैं अनाथ हूँ, मुझे कोई बचाओ! यह ग्राह मुझे पकड़ लाया है, क्षण में खा जायगा मैं मर जाऊँगा।"

बच्चे का करुण क्रन्दन सुनकर करुणामयी माँ का नवनीत से भी स्निग्ध हृदय पिघल गया। इन्होंने करुणा भरी वाणी में ग्राह से कहा--"ग्राहराज! तुम इस भोले-भाले बच्चे को क्यों पकड़ लाये हो? इसे छोड़ दो।"

ग्राह बोला--"देवि! क्या करें, ब्रह्माजी ने हमारी यही वृत्ति निर्धारित की है। सायंकाल में जो भी आ जाता है, वह मेरा आहार हो जाता है। आज मैं कई दिन से भूखा हूँ। यह बच्चा मुझे भाग्य से मिल गया है। इसे ही खाकर मैं अपने प्राणों को धारण करूँगा।"

अत्यन्त दया के साथ देवी पार्वती बोलीं--"ग्राहराज? तुम्हें दया भी नहीं आती। कैसा सुन्दर भोला-भाला शिशु है, इसे खाकर तुम्हारी क्या तृप्ति होगी? इसे तुम छोड़ दो।"

ग्राह बोला—"गौ घास पर दया करे, तब तो उसे भूखों ही मर जाना होगा। अपने आहार पर कौन दया करता है ? चींटी दीमक को खा जाती है, दीमक सुन्दर-से-सुन्दर पौधों को जड़ से चट कर जाती हैं। हरे-हरे सुन्दर पौधों को भेड़, बकरी, गौ चर जाती हैं। बकरी के सुन्दर भोले बच्चों को मांसाहारी बड़े-बड़े शिष्ट ज्ञानी ध्यानी चट कर जाते हैं, उनकी हड्डी तक चबा जाते हैं। कितने सुन्दर फल लगते हैं, मनुष्य उन्हें तोड़कर खा लेते हैं। ककड़ी, लौकी, कद्दू जब कोमल होते हैं, बढ़ने नहीं पाते, उन्हें ही तोड़कर मनुष्य खा जाते हैं, क्या उनमें जीव नहीं ? क्या उन्हें कष्ट नहीं होता ? मांसाहारी लोग अपने घर में बकरी, मुर्गी पालते हैं। उनके अंडे बच्चों को खा लेते हैं। सर्पिणी अपने बच्चों को ही खा जाती है। इस पेट को तो किसी-न-किसी प्रकार भरना ही है। संसार में ऐसा कौन पदार्थ है, जिसमें जीव नहीं। सभी जीव-जीवों के बल से जीते हैं। एक जीव दूसरे जीव से अपनी जीविका चलाता है। मेरी जीविका यही है।"

ग्राह की ऐसी पांडित्य पूर्ण बातें सुनकर माँ पार्वती बोलीं—"देखो, ग्राहराज ! यह ठीक है कि जीवों की जीवों द्वारा ही जीविका चलती है। फिर भी संसार में दया भी तो कोई वस्तु है। केवल अपना ही पेट पाल लेना यह तो पशुता है। तुम तो बातें बुद्धिमानों की-सी कर रहे हो। मैं मानती हूँ, यह तुम्हारा आहार है, फिर भी मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ। तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। इसे तुम छोड़ दो। इसके बदले में तुम भले ही मुझे खा लो।"

देवी पार्वती के ये बचन सुनकर ग्राह ने कहा—"भगवति ! मैं आपको तो खाऊँगा नहीं और आप अपनी कोई अन्य प्रिय

वस्तु दें, तो मैं इसे छोड़ सकता हूँ। आपने गिरिराज के शृंग पर बैठकर जो तप किया है, उसे मुझे दे दें, तो मैं इसे छोड़ दूँ।"

शीघ्रता के साथ जगदम्बिका बोलीं—"ग्राहराज! वह तप नहीं, मैं अपने जीवन भर के जन्म जन्मान्तर के किये हुए तप को देती हूँ, तुम इस बच्चे को छोड़ दो।" यह कहकर उन्होंने हाथ में

जल और कुशा लेकर अपना सम्पूर्ण तप ग्राह के लिये संकल्प पूर्वक अर्पण कर दिया। जगदम्बिका के महान् तप को पाकर वह ग्राह सूर्य के समान तेजस्वी हो गया। उसने बच्चे को छोड़ दिया। माता ने बड़े स्नेह से, बड़े प्यार से, बड़े वात्सल्य से उस बच्चे को उठा लिया और छाती से चिपटा लिया। ग्राह ने पूछा—"देवि! आपने इतने कष्ट से उपार्जित किये हुए अपने तप को इस एक बालक के पीछे व्यर्थ ही नष्ट क्यों कर दिया?"

माँ बोलीं—"ग्राहराज! तप तो फिर भी हो सकता है, किन्तु इस बच्चे को तुम खा जाते, तो यह थोड़े ही फिर आ सकता था? तप को तो मैं फिर भी संचित कर लूँगी।" इतना सुनकर ग्राह वहीं अन्तर्धान हो गया। बच्चा स्वेच्छापूर्वक चल गया। इतने में ही शंकरजी भी आ गये। पार्वतीजी ने कहा—"देव! अब मुझे तपस्या करने की आज्ञा दें। मैं तप से हीन हो गई हूँ।"

शिवजी ने पूछा—"किस पाप से तुम तप से हीन हो गई?"

पार्वतीजी ने कहा—"पाप से नहीं, बच्चे पर दया करके मैंने अपना सम्पूर्ण तप ग्राह को अर्पण कर दिया।"

यह सुनकर शिवजी हँस पड़े और बोले—"देवि! दया से तप क्षीण नहीं होता, वह और बढ़ता ही है। परोपकार के लिये अर्पण किया हुआ तप नष्ट नहीं होता, किन्तु और अधिक पुष्ट हो जाता है। वह ग्राह कोई और नहीं था। मैंने ही तुम्हारी दया की परीक्षा लेने के लिये ग्राह और बालक का रूप रख लिया था। भक्ष्य और भक्षक दोनों रूप मेरे ही थे। तुमने तपस्या मुझे अर्पण की मुझे अर्पण की हुई वस्तु नष्ट नहीं होती, अक्षय हो जाती है। दया की जड़ें इतनी गहरी हो जाती हैं कि उन्हें कोई कितना भी काटना चाहे, नहीं काट सकता, इसलिये अब तुम्हें और तप न करना होगा। तुम्हारा तप अक्षय हो गया। तुमने दया देकर मुझे मोल ले लिया। मैं अब तुम्हारा हो गया।" यह

कहकर शिवजी ने उन्हें आधा अंग प्रदान किया। अपने में उन्हें मिलाकर एक कर लिया।

सूतजी कहते हैं--"मुनियो! शिव-पार्वती, उमा-महेश, गौरी-शंकर के चरित्र अनन्त हैं। सम्पूर्ण वृक्षों को जलाकर उनकी स्याही बनाई जाय, सुमेरु की लेखनी बनाई जाय, सम्पूर्ण पृथ्वी को कागज बनाकर शारदा देवी सदा लिखती रहें, तो भी शिवा-शिव के सम्पूर्ण चरित्रों को लिखने में समर्थ नहीं हो सकतीं। शिव-चरित्र महान् है, अगाध है, अपार है। उसका पार पाना असंभव है। अतः मैंने यहाँ 'भागवती कथा' के प्रसंग में अत्यन्त ही संक्षेप में शिवजी के कुछ चरित्रों का यथामति वर्णन किया है। ये प्रसंग उसी प्रकार हैं, जिस प्रकार गंगाजी के अविच्छिन्न महान् प्रवाह में से कुछ बिन्दु गंगाजल से निकालकर, एक पात्र में भरकर यात्री ले जाते हैं और घर जाकर कहते हैं--"हम तो गंगाजी को ले आये।" वास्तव में जो वे अपने क्षुद्र पात्र में लाये हैं, वह सम्पूर्ण गंगाजी नहीं है, किन्तु पाप काटने की शक्ति उस गंगाजल के कणों में सम्पूर्ण ही है। उन विन्दुओं को जो भी ग्रहण करेगा, उसी के पाप कट जायँगे। इसी प्रकार इन चरित्रों को जो श्रद्धा सहित सुनेंगे, सुनकर मनन करेंगे, दूसरों को सुनावेंगे, पढ़ने को प्रेरित करेंगे, उन सबके पाप भगवान् सदाशिव अपने त्रिशूल की नोक से नाश कर देंगे। यह निःसन्देह बात है। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, गंगाजी के बीच में बैठकर, त्रिवेणीजी के मध्य में कह रहा हूँ!" छप्पय

स्वामिन्! पशुपति! प्रभो! दास के पाश छुड़ाओ।
जगदम्बा! माँ! उमा! वत्सकूँ हृदय लगाओ॥
भटक्यो जगमहँ जनक! शरण चरननिमहँ दीजे।
माँ! अब गोद बिठाय चूमि मुख सुत को लीजे॥
यद्यपि हौं अति अधम हूँ, तऊ पिता! अपनाइ लै।
मैया! साधन रहित सुत, कूँ हियतें चिपकाइ लै॥

अधर्म का वंश

[२१७]

मृषाऽधर्मस्य भार्याऽऽसीद्दम्भं मायां च शत्रुहन् ।
असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्गृहेऽप्रजः ॥*

(श्री० भा० ४ स्क० ८ अ० २ श्लोक)

छप्पय

है अधर्म विधि पुत्र मृषा है ताकी जाया ।
द्वै तिनिकें सन्तान दम्भ सुत पुत्री माया ॥
ते पति पत्नी बने लोभ शठता द्वै जाये ।
दम्पति ह्वैकें तिननि क्रोध हिंसा उपजाये ॥
हिंसा क्रोध विवाह करि, कलि दुरक्ति जनि सन्तती ।
अन्य युगनि में छीण बल, होहिँ बली कलि में अती ॥

निर्गुण में सृष्टि नहीं, निर्विकार में सृष्टि नहीं, शुद्ध में सृष्टि नहीं, साम्य में सृष्टि नहीं, ज्ञान में सृष्टि नहीं। सृष्टि के लिये सगुण, कामना, अविद्या, विषमता, माया आदि का आवश्यकता है। भगवान् में ये बुरी वस्तुऐं कहाँ से आ गईं। यदि उनमें ये सब वस्तुऐं हैं, तो वे शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अज, निर्विकार निर्लेप,

---

* मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी ! अधर्म की स्त्री का नाम मृषा। दोनों के संसर्ग से दम्भ नाम का पुत्र और माया नाम की पुत्री ये दो सन्तानें हुईं। इस अधर्म का ही कोई भाई निर्ऋति था, उसके कोई सन्तान नहीं थी, इसलिये इन दोनों को उसने गोद ले लिया।"

निराधार, निरञ्जन, निर्द्वन्द्व, निष्कल, निर्गुण नहीं हो सकते हैं। यदि उनमें ये नहीं तो और आई कहाँ से। क्योंकि सभी के जनक उत्पादक तो वे ही हैं। उन्होंने इन बुरी वस्तुओं को कहाँ से उत्पन्न किया ?

बुरा तो संसार में कुछ है ही नहीं। बुरा कहना ही बुरा है। किसी को बुरा कहना हृदय से छोड़ दो। चारों ओर तुम्हें वहीं अच्छा-ही-अच्छा दिखाई देगा। सबकी उत्पत्ति भगवान् से है। भगवान् शिव स्वरूप हैं, शिव अशिव की सृष्टि कर ही नहीं सकता। मृत्तिका से जो भी घट, सकोरे गमले आदि बनेंगे, सब मृत्तिका रूप ही होंगे। पवित्र प्रभु की सम्पूर्ण सृष्टि पवित्र ही है। जिनका मन मैला हो गया है, वे पवित्र को भी अपवित्र समझते हैं। अपने मन का मैल निकाल देने से संसार में से मैल मिट जाता है। संसार में मैल है ही नहीं, वह तो हमारे मन की उपज है।

सृष्टि प्रकरण को चालू रखते हुए विदुरजी मैत्रेय मुनि से पूछते हैं—"प्रभो ! आपने भगवान् स्वायंभुव मनु की आकूति देवहूति और प्रसूत इन तीनों कन्याओं के वंश का वर्णन किया। इसी प्रसंग में आपने ब्रह्माजी के मारीचादिक मानसिक, पुत्रों के भी वंश का वर्णन संक्षेप में कर दिया। अब मैं यह और जानना चाहता हूँ कि ब्रह्माजी के दश मानस पुत्रों में एक नारदजी भी हैं। ऋभु, हंस, अरुणि, यति और सनकादिक भी उन्हीं के पुत्र हैं, इनके वंश की चर्चा आपने नहीं की।"

यह सुनकर मैत्रेय मुनि हँस पड़े और बोले—"विदुरजी ! सृष्टि तो संग्रह में है। किसी वस्तु को अपनाओ तभी प्रपंच बढ़ेगा, तभी नई सृष्टि होगी। जिसने संग्रह ही नहीं किया, उसको वृद्धि कैसे होगी—"नङ्गी नहाकर क्या निचोड़ेगी ? ये सब लोग निवृत्ति मार्ग के उपासक हुए। सनक, सनन्दन, सनत् कुमार,

सनातन, नारद, ऋभु, हंस, अरुणि और यति ये सब-के-सब उर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हुए। ये भगवान् की माया रूपी जाया से सदा पृथक् ही रहे, इसलिये इनके बाल बच्चे कैसे हों, ये ही सदा बच्चे बने रहे। जो बच्चे पैदा नहीं करता, वह स्वयं ही सब का सदा बच्चा बना रहता है।"

विदुरजी बोले—"महाराज! इन लोगों के अतिरिक्त भी तो ब्रह्माजी के और बहुत से पुत्र हैं। आपने धर्म की तेरह पत्नियों का तथा उनकी सन्तानों का तो वर्णन किया, किन्तु अधर्म और निर्ऋति भी उन्हीं के पुत्र हैं। अधर्म भगवान् की पीठ से उत्पन्न हुआ था और निर्ऋति पायु देश से; इसलिये आप इनकी भी सन्तान का वर्णन कीजिये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! विदुरजी के पूछने पर भगवान् मैत्रेय अधर्म के वंश का वर्णन करने के लिये उद्यत हुए।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी, अधर्म के वंश को सुनने से क्या लाभ? हम सब तो धर्म के तत्त्व को जानना चाहते हैं।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"महाराज, यह बात नहीं है। अपने-अपने स्थानों पर अपनी-अपनी मर्यादा में सभी का अस्तित्व रहेगा, तभी सृष्टि का कार्य चलेगा। आप कहें कि अधर्म का सर्वथा नाश हो जाय, यह असम्भव है। उसका भी अस्तित्व सृष्टि के लिये आवश्यक है, किन्तु जब वह मर्यादा को उल्लंघन करके धर्म को दबा लेता है, सर्वत्र अधर्म का ही अभ्युत्थान हो जाता है, तब उसे क्षीण करने, धर्म की वृद्धि के लिये भगवान् का अवतार होता है।"

शौनकजी बोले—"अच्छा है, होता है होता रहे। हमें अधर्म की चर्चा छेड़ने से ही क्या! उससे अपरिचित ही बने रहें, तभी ठीक है।"

इस पर हँसते हुए सूतजी बोले—"महाराज ! अज्ञान में और त्याग में बड़ा अन्तर है। जो गुण दोष जानकर त्याग-संग्रह किया जाता है, यथार्थ वही त्याग है। धर्म-अधर्म को जानकर धर्म को ग्रहण कर लें अधर्म को त्याग दे, इसलिये दोनों का ज्ञान आवश्यक है। यह धर्म है, यह अधर्म है। कभी-कभी धर्म अधर्म का-सा रूप बना लेता है, इसलिये इसके पूरे परिवार का परिचय आवश्यक है। भगवान् मैत्रेय ने जिस प्रकार विदुरजी को अधर्म की पूरी वंशावली सुनाई थी, उसी का मेरे गुरुदेव भगवान् शुक्र ने महाराज परीक्षित् के सम्मुख वर्णन किया, उसी का वर्णन मैं आपके सम्मुख करता हूँ। आप बहुत ध्यानपूर्वक सुनें।"

मैत्रेय मुनि बोले—"विदुरजी ! ब्रह्माजी के पृष्ठ देश से अधर्म की उत्पत्ति हुई और पायु देश से निर्ऋति (असत्य) की। ये दोनों भाई एक ही स्वभाव के थे। अधर्म ने मृषा के साथ विवाह किया। अधर्म के वीर्य और मृषा के गर्भ से दम्भ नाम का पुत्र और माया नाम की कन्या उत्पन्न हुई। ऐसा कहा जाता है कि बेटे में बाप के से प्रायः गुण होते हैं और लड़की में माता के से। अधर्म सदा दम्भ से होता है। अधर्म की रक्षा दम्भ से ही होती है। दम्भ का नाम पाखण्ड भी है। पाखण्ड का अर्थ ही पाप का चिह्न। इसी प्रकार मृषा (झूठी वाणी) से माया उत्पन्न होती है। मृषा की रक्षा माया से होती है। अधर्म के भाई निर्ऋति का विवाह ही नहीं हुआ, इसलिये उसने इन दोनों संतानों को गोद ले लिया। उसी ने इन दोनों को पाला-पोसा, क्योंकि अधर्म को अपनी सन्तान के प्रति अनुराग नहीं था। अधर्म ही ठहरा, इसलिये ये दोनों निर्ऋति (असत्य) के बच्चे कहलाये।"

दम्भ और मृषा यद्यपि सगे भाई-बहिन थे, किन्तु अधर्म की

संतति होने से इन दोनों ने आपस में विवाह कर लिये। इसी-लिये ये पति-पत्नी बन गये। इनके भी दो सन्तान हुईं। एक लोभ नाम का पुत्र और निकृति (शठता) नाम की लड़की।

जो बाप दादे करते आते हैं, वही बच्चे भी करते हैं। इस-लिए लोभ ने अपनी सगी बहिन निकृति को बहू बना लिया। इनके भी क्रोध नाम का एक पुत्र हिंसा नाम की एक पुत्री हुई। अब तो परम्परा चल पड़ी, कुलाचार हो गया। क्रोध ने भी अपनी बहिन हिंसा के साथ विवाह कर लिया। जैसे दक्षिण देश में बहिन की कन्या (भानजी) के साथ मामा विवाह कर लेता है उस पर नियमानुसार उसका अधिकार होता है तथा मामा की लड़की पर भानजे का अधिकार होता है, आसा फूफियों के लड़कों में उधर विवाह होते हैं, इसी प्रकार अधर्म वंश में सगी बहिन के साथ भाई का विवाह होने की प्रथा चल पड़ी। क्रोध ने जब हिंसा को पत्नी रूप में स्वीकार कर लिया, तो उन्हीं के यहाँ ये महापुरुष कलियुग देवता उत्पन्न हुए, जिन्होंने आज-कल लोगों को नाकों चने चबा रखे हैं। इनकी एक बहिन दुरुक्ति (कटु बचन-निन्दा) भी हुई, उसने इसे आगे चलकर अपनी वंश प्रथा के अनुसार पत्नी बना लिया।

दुरुक्ति देवी ने कलि के वीर्य से भय और मृत्यु को उत्पन्न किया। भय ने भी मृत्यु से विवाह कर लिया। उनके भी दो सन्तति हुई, एक लड़की और दूसरा लड़का। लड़की का नाम यातना और लड़के का नाम निरय (नरक) हुआ। नरक ने विवाह नहीं किया। यह मालूम पड़ता है, संसारी लोगों के क्लेश देखकर ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बन गया। इसी से यातना (क्लेश) अलग रही। नरक अलग रहकर सबके दुःखों का फल भोगता रहा।"

मैत्रेय मुनि कहते हैं—"विदुरजी! वैसे तो अधर्म का वंश

बहुत बड़ा है, किन्तु मैंने यह अत्यन्त ही संक्षेप में कह दिया। इसे आप एक बार ही सुनकर सन्तोष न करें। बार-बार इसे सुनें जो पुरुष तीन बार इसे सुन लेगा, उसे सुनने मात्र से ही बड़ा पुण्य होगा और उसके मन में छिपा हुआ कोई अधर्म का वंशज होगा, तो वह भाग जायगा ?"

विदुरजी बोले—"महाराज ! सुनने मात्र से अधर्म का वंशज कैसे जायगा ?"

मैत्रेय मुनि कहने लगे—"देखिये, विदुरजी ! यह अधर्म चोर है, ठग है। चोर का साहस तो बहुत होता है, इतने आदमियों के सोते हुए छत फोड़कर घर में घुस जाता है, किन्तु उसके पैर दुर्बल होते हैं, जहाँ तनिक भी खट-पट सुनाई दी, जहाँ किसी ने थोड़ा भी खाँसा, वहीं भाग जाता है। चोर तभी तक लोगों के, घरों में छिपा रहता है, जब तक कोई उसका पता न पावे। यह न जानने पावे कि यह किसका लड़का है, कहाँ रहता है ? जहाँ उसका परिचय लोगों को प्राप्त हुआ कि वह ठहरता नहीं, इसी प्रकार अधर्म, मृषा, दम्भ, माया, लोभ, शठता, क्रोध, हिंसा, कलि, दुरुक्ति, भय, मृत्यु और निरय तथा यातना, तभी तक जीवों के हृदय में छिपी रहती है, जब तक उन्हें कोई जाने नहीं, जहाँ उनका यथार्थ परिचय मिला कि सद्वृत्तियाँ उनका तिरस्कार करने लगती हैं। तब ये तिरस्कृत होकर भाग जाते हैं। इसलिये इस परम्परा को याद रखना चाहिये। जहाँ इनमें से दिखाई पड़े, झट याद कर लेना—"अरे, यह तो उसका लड़का है, इसकी माँ का नाम यह है, इसकी नानी वह है।"

यह सुनकर शौनकजी बोले—"सूतजी ! वह अधर्म कौन था, पहिले जन्म में इसे भगवान् का पुत्रत्व कैसे प्राप्त हुआ ?"

शौनकजी के ऐसे बचन सुनकर सूतजी बोले—"महाभाग !

अब मैं क्या बताऊँ ? यह सृष्टि अनादि है, इसमें कभी कोई रूप धारण कर लेता है, कभी कोई। किसी कल्प में कोई कुछ बन जाता है, दूसरे कल्प में उसी का कुछ नाम हो जाता है। अब जो मनु है, दूसरे कल्प में इन्द्र हो जाता है, आज जो इन्द्र है, दूसरे कल्प में मनु अथवा मनु पुत्र हो जाता है! इस अधर्म के सम्बन्ध में भी हमने पुराणों में एक कथा सुनी है।

आप जानते ही हैं, प्रयागराज में प्रत्येक माघ मकर में कल्पवास होता है। गङ्गा यमुना वर्षा में बढ़कर जितने स्थानों को कल्प (नवीन) कर देती हैं, उन दोनों के बीच की भूमि को कल्प स्थल (नूतन भूमि) कहते हैं। उसमें एक महीने बास करने का नाम कल्पवास है। माघ लगते ही वहाँ बड़ा ठाठ जम जाता है, साधु सन्तों के अखाड़े राजे महाराजे, सेठ साहूकार सभी की कुटियाँ लग जाती हैं, दुकानें सज जाती हैं, सड़कें बन जाती हैं, लाखों लोग आते-जाते हैं, संसार भर के व्यापार होते हैं। अनजान यात्री आता है, तो समझता है यह चहल-पहल सदा बनी रहती होगी, यह नगर इसी प्रकार बसा रहता होगा, किन्तु श्रावण भादों में जाइये, न सड़क का पता है, न बाजार का कोई अनुमान भी नहीं कर सकता, यहाँ कभी बस्ती होगी। जहाँ रसगुल्ला और पेड़ों की दुकानें थीं आज वहाँ अगाध जल-राशि सैकड़ों पुरसा पानी धूम रहा है। दूसरे कल्पवास में फिर वही ठाठ-बाट।

यह कल्पवास ब्रह्माजी के कल्प की एक बानगी है। ब्रह्माजी के दिन के अनन्तर सूर्य प्रचंड रूप रखकर संसार के सभी सलिल को सोख लेते हैं। प्राणी जल के बिना मरने लगते हैं। तभी यहीं प्रयागराज के गङ्गा-यमुना के मध्य से वैणी कुण्ड से जल उबलता है। वह जल सातों समुद्रों को एक कर देता है। कुण्ड में जहाँ से पहिला स्रोत निकलता है जो सभी समुद्रों को मिलता है, वह

स्रोत प्रतिष्ठानपुर (झूसी) में समुद्रकूप के नाम से विख्यात है। तब कोई जीव, कोई वृक्ष नहीं रहता। संसार में जल-ही-जल रहता है। एक अक्षयबट बना रहता है। उसके पत्ते पर बाल मुकुन्द भगवान् क्रीड़ा करते हैं। कल्पान्त में भगवान् की नाभि कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न होकर सृष्टि करने लगते हैं।

एक बार ब्रह्माजी सृष्टि करने का संकल्प कर रहे थे कि इतने में ही मधु कैटभ दो असुरों ने आकर ब्रह्माजी को धमकाना आरम्भ किया—"तुम कौन हो, इस कमल पर क्यों बैठे हो ?"

ब्रह्माजी तो उन दोनों दानवों की घुड़की से डर गये।

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! जब प्रलय में सभी नष्ट हो गये, तो फिर ये दैत्य कहाँ से आ गये ? ये तो ब्रह्माजी से भी बलवान् थे, उन्होंने लोक पितामह को भी डरा धमका दिया।"

सूतजी बोले—"महाराज ! कुछ पूछिये मत। इन भगवान् की लीला अपरम्पार है। इनके खेल के विषय में कुछ भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता। कुछ अनुग्रह सृष्टि के जीव होते हैं, जिनका प्रलय में भी नाश नहीं होता। वे घोर तमोगुणी, घोर सतोगुणी दोनों ही प्रकार के होते हैं। मार्कण्डेय, लोमश आदि मुनि प्रलय में भी बने रहते हैं। इसी प्रकार ये दोनों दैत्य भी प्रलय के जल में निर्भय होकर घूम रहे थे। भगवान् ने जब देखा ब्रह्माजी डरे हुए हैं, तब आकाशवाणी हुई "इस कमल नाल के छिद्र में घुस जाओ, वहाँ मेरे दर्शन होंगे।" ब्रह्माजी ने ऐसा ही किया। ये दैत्य भी कुछ कम नहीं थे। ब्रह्माजी तो भयभीत हो गये थे, उनसे युद्ध करना इन्होंने उचित नहीं समझा। भगवान् को युद्ध के लिये ललकारा। भगवान् तो सोते-सोते थक गये थे, वे युद्ध करने को उधार खाये बैठे थे, भिड़ गये दोनों से। कई हजार वर्ष तक युद्ध होता रहा, किन्तु दैत्य तो अजेय थे। भगवान्

उन्हें हरा नहीं सके। हाय रे लीला! जिनकी भृकुटि विलास से असंख्यों ब्रह्मांड बनते बिगड़ते हैं, वे दोनों भुनगों के समान दैत्यों को भी न मार सके। मार देते तो फिर उनका बना बनाया खेल बिगड़ न जाता। उन्हें तो खेल बनाना था।"

ब्रह्माजी अपने कमल पर फिर जा बैठे। दैत्यों ने फिर उन्हें धमकाना आरम्भ किया। अबकी भगवान् फेंट बाँधकर, पीताम्बर कसकर, ताल ठोंककर फिर युद्ध के लिये खड़े हुए। किन्तु उनकी सब तैयारियाँ धरी-की-धरी ही रह गईं। दैत्यों का वे बाल-बाँका भी न कर सके। अब उन्होंने छल आरम्भ किया। इस विद्या में तो भगवान् पूरे निपुण हैं। वे बोले—"भैया! तुम लोग बड़े बली हो, मैं तुम पर बड़ा प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे कोई वरदान माँगो।"

यह सुनकर दोनों दैत्य बड़े जोरों से हँस पड़े और बोले—"यह अच्छी रही? हम तुमसे हारे हैं क्या जो वरदान मागें? तुम्हीं हमसे हारे हो, इसलिये तुम्हीं जो चाहो हमसे वरदान माँगो। तुम जो चाहोगे वही हम वरदान देंगे।"

भगवान् को तो किसी बात में लज्जा, शील, संकोच है ही नहीं। भिखारी बन जायँ, दास, सेवक, भृत्य, सारथी जो चाहो बना लो। उनकी बात सुनकर बोले—"अच्छा, भैया! तुम यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो यही वरदान दो कि तुम मेरे हाथ से मारे जाओ।"

इतना सुनते ही दैत्यों के होश उड़ गये और अपना-सा मुँह बनाकर कहने लगे—"अरे, यह तो बड़ा छलिया निकला। इसने तो हमें ही ठग लिया, अस्तु, अब तो हम वरदान दे ही चुके; किन्तु वरदान हम भी माँगेंगे।" भगवान् ने कहा—"बोलो, तुम क्या माँगते हो? मैं वही वर तुम्हें दूँगा।"

दोनों दैत्य बोले—आप हमें भले ही मार दें, किन्तु आगे हम आपके पुत्र होकर उत्पन्न हों।"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, यही सही।" इतना कहकर भगवान् ने जंघा पर रखकर मार दिया। उनके मेद से ही यह मेदिनी (पृथ्वी) बनी। वे ही दोनों आकर विराट् भगवान् के अधर्म और निर्ऋति पुत्र हुए, जो इस कल्प में ब्रह्माजी के पृष्ठ भाग और पायु स्थान से प्रकट हो गये।

मैत्रेय मुनि विदुरजी से कहने लगे—"विदुरजी! यह मैंने अधर्म का वंश और अधर्म तथा निर्ऋति के पूर्व जन्म का वृत्तान्त कहा। अब आप और जो भी पूछेंगे, उसका उत्तर दूँगा।"

नैमिषारण्य में सूतजी शौनकादि मुनियों से कह रहे हैं—"महर्षियो! विदुरजी अधर्म वंश को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और वे आगे की कथा पूछने को सोचने लगे।"

छप्पय

कलि दुरुक्ति ने जने मृत्यु भय दोनों बालक।
दुलहा दुलहिनि बने क्रूर सब जग के घालक॥
तिनि दोउनि तें नरक यातना भये मूढ़ मति।
पापनि को दुख भोग करावें देहिँ दुःख अति॥
जे अधर्म के वंश कूँ, स्वयं पढ़ें सबतें कहैं।
तिनके मन की मलिनता, मिटै अन्त सुरपुर लहैं॥